

जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश प्रथम खण्ड

लेखक

श्री जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'
संस्थापक 'वीर-सेवा-मन्दिर'
सरस्वती, शिक्षा सङ्ग्रहालय

['युग-वरीश' साहित्यिक वित्तक; १५००००००, मुलानुमानन, हरीवीर-
परम्परायादि ग्रन्थोंके विस्तृत अनुवाचक, टीकाकार एवं भाष्यकार;
सर्वेकान्तारि-वर्गी और भवविनाशकारि ग्रन्थोंके सम्पादक]



प्रकाशक

श्रीवीर-शासन-संघ, कलकत्ता

साधारण, बीर-निवासि सं० २५८८८, विमान सं० २०१३

प्रथम संस्करण]

वृत्ताई १९५६

[एक हजार अंश]

मुद्रक
छोटेलाल जैन

संज्ञा 'वीर-शासन-संघ'
२६, एन. सिविल रोड, बनारस ३०

(१) वीर-सेवा-मन्दिर
२१, एम. बाग, रोहमी

(२) वीर-शासन-संघ
२६, एन. सिविल रोड, बनारस ३०

मुद्रक
सन्मति प्रेस
२३०, एम. बाग, रोहमी
रोहमी

प्रकाशकीय

“वैद्य साहित्य छोड़ दवाइयाँ बर विषम प्रकार” वाक्य एकमात्र सही प्रत्यक्ष कथन मात्रात्मक समक्ष उपस्थित किया जा रहा है। इसमें प्राच्य-विद्या-साधनाओं के आधारों की तुलनात्मकताओं की तुलना के रूप में बताया गया है, जो समय समय पर अनेक-आदि तरीकों और प्रयोग-प्रकार-अनुशासन तरीकों की समझनाओं में अनेक प्रयोग हुए हैं। लेकिन वे संख्या बतानी प्रमाण है, कि यह प्रमाण ही अर्थों में उपस्थित करना होता। एक प्रमाण अर्थों में अनेक के समक्ष ही हो गये हैं। दूसरे अर्थों में प्राच्य-प्रमाण प्रमाण ही प्रमाणों में संभावना है।

द्विहस्त-समुच्चयताओं और आदिमिकों के लिए यह नए लोगों एवं नयेसमाजिकों के लिए हूए थे तबसे बहुत ही उपयोगी है, और विश्व के उपयोगी मानेकी चीज है। वर्तमान एक अच्छी Reference book के रूपमें लिख है। बतएव इस पुस्तकी एकविषय पर दुसरेकी रूपमें विकासकी प्रतीति काव्यवचना की। यंत्र मानुषताकी प्रतीति के जैन साहित्य और द्विहस्त विषयक लेखिका एक अच्छे कुछ रूप दर्शने प्रकाशित हुआ ना। यह विमला उपयोगी किन्तु इस, इस उपयोगमें आने माने विद्वान् बाधते है। इस लेखकी एका संशय के कुछ लोगों पर भी किन्ता ही क्या तथा विषय प्रकाश मात्रा मया है। जैनोंके प्रागल्भिक द्विहस्तके विमलियं इस प्रकारकी पुस्तकमें मान्यताकी अतिरिक्त मान्यवता है। अंततःनाममें इस प्रकारके पुण्यवर्तक विद्वानोंके यंत्र कुलविद्वानोंके सुकान और यंत्र मानुषताकी प्रतीति नाम ही मान्यता है। पर: इन लोगों मान्यवर्तक-विमलियं विमलियं भारतीय समाज मान्यवत: और जैन समाज विमलियं: कभी है।

इन लोगोंकी कृते हुए पाठकोंको ज्ञात होना कि इनके निर्वाह में संसद को कितने अधिक सब, सम्पत्ति, पित्तन, अनुदान, सन, एवं साधन-स्रोत से काम लेना पड़ा है। कदाचि भी मुक्तार सोच रहे थेकर्मकी कुछ सखी होती है पर वह बहुत लंबी-पुसी, पुनरावृत्तियों से रहित और निबन्धको नाश करने वाली होनेसे अनुसंधान-विश्लेषणके लिए कमीज उतारोपी पड़ती है और तथा धर्म-धर्मके कर्मों बची रहती है। इन मेंसेले इस हृदये इतिहासकी कितनी ही उपलब्धि मुनक गई है। साथ ही अपनेक नये विषयोंके अनुसंधान का क्षेत्र को प्रसारित हो गया है। कितने ही ऐसे धर्मोंके साथ भी उपलब्ध हुए हैं, जिनके कुछ उदाहरण तो ज्ञात हैं, पर उन धर्मोंके आन्तरिक धर्मों एक पक्ष नहीं जता। साथ-साथ ही मेकन को कितनी ही प्रगतिवादी धर्मिकता की सा रही थी या प्रगतिवादी हो रही थी, इन सबका निरक्षण भी इन सब लेखकों को करना है।

धर्मोंके हृदयों के अन्तर्गत आधीन साहित्य की बारम्बारें बहुत कुछ गह-भट्ट हो चुका है, किन्तु भी या कुछ धर्मोंके और अन्तर्गत से जन्म भी साहित्य इतिहास की उत्पत्तियोंकी अनुसंधान-योग्य बहुत कुछ साधनों उपलब्ध है, जन्म तथा परम हर्ष आधीन साहित्यिक अनुसंधान धर्मोंकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। यह धर्मों की धर्मों को सखता है, जहाँकि इन धर्मों प्रत्यक्ष अपने आन्तरिकता सत्य विचारित कर लेते। सत्यवादी हुए उनके साहित्यके अपने इतिहास, संस्कृति और आन्तरिकताके अनुसंधान के एक समुदाय विषयोंका आचार्य जन्म प्राप्त कर सकते। जन्म हर्षों उन विषय धर्मोंकी ओरका ही गुरा करने करना होता, जहाँ सखता विच संकेपी।

आरम्भे प्रकाशनों के विरत अनुसंधानकी नेतृत्वने धर्मों एक आन्तरिकताके मुद्रा का कि 'धर्म कोई धर्मिक धर्मों आन्तरिक-उत्पत्तियों के अन्तर्गत की तो बड़ी से बड़ी मन-उचित भी जन्म धर्म (Nation) के उत्कर्षमें सहायक नहीं हो सकती है। आन्तरिक अनुसंधानों उत्पत्तिन सत्य बड़ा धारण है।

कोई राष्ट्र, कोई धर्म धर्मों कोई धर्मों आन्तरिक के अन्तर्गत नहीं रह सकता, जो ही धर्मों कि आन्तरिक के अन्तर्गत धर्मों एवं धर्मोंकी कल्पना ही अन्तर्गत है। अनुसंधान विषयोंका आन्तरिकता है, कि 'ईसाई

लेख-सूची

१ भगवान् महावीर जीर उनकी समय (जनेकाल वर्ष १ वर्षादि जीर सं० २४२६)	१
२ वीर-निर्वाण-सम्बन्धी समाजोचना पर विचार (जनेकाल वर्ष ४ वर्षादि १६४०)	४४
३ वीर-शासनको उत्पत्तिक समय और स्थान (जने० १६४३)	२०
४ जीव शोषकराज शासन-वेद (जनेकाल वर्ष १२ वर्षादि १६३६)	६०
५ कुतायसद-कथा (वीर कट्टर १६३६)	८०
६ श्रीकुन्दकुन्दपथ वीर उनके समय, विवर १६४८ (पुरातन केनाथ-सूची-अनुसंधान १६४०)	८६
७ कल्याणसूत्र के कर्ता कुन्दकुन्द (जने० वर्ष १ वीरकाल १४२६)	१०२
८ उदात्ताति या उदात्ताधी (जने० वर्ष १ वीरकाल १४४६)	१०६
९ सन्ध्यासूत्रको उत्पत्ति (जने० वर्ष १ वीर काल १४४६)	१०६
१० सन्ध्यासूत्रगत सूत्रको एक संक्षेपक प्रति, ११ वर्षादि १६३६ ११२ (जने० वर्ष ३ वीर सं० १४३६)	११२
११ जने० सन्ध्यासूत्र वीर उनके भाष्यको ज्ञान, १२ जुलाई १६४२ (जने० वर्ष ३ वर्ष १६४२)	११२
१२ श्यामी समन्वय, वैशाल सुनि २ वर्षादि १६०८ (रत्नक० अन्तर्गत-श्यामी समन्वय)	१४४
१३ समन्वयसूत्रा मुनि-विधि वीर आपत्काल	२००
१४ समन्वयसूत्रा एक वीर परिचय पत्र, २ वर्षादि १६४४ (जने० वर्ष ३ वर्ष १६४४)	२४४
१५ श्यामी समन्वयसूत्र जने० अन्तर्गत, तात्त्विक वीर श्यामी नीति से २० वर्षादि १६४४ (जने० वर्ष ३ वर्ष १६४४)	२४४
१६ समन्वयसूत्रा प्रयोगक सविम परिचय (रत्नक० अन्तर्गत)	२४८
१७ गंधर्वसि महापाण्डवी लोचन, वैशाल मुनि २ वर्षादि १६८२ (जनेकाल १६८० रत्नक० अन्तर्गत १६८२)	२४८
१८ समन्वयसूत्रा समन्वय वीर अन्तर्गत सं० वीर पाठक (जनेकाल वर्ष १ जुलै १६४४)	२६०

२६	सर्वोपनिधिपर समन्तभट्टका प्रभाव (प्र०-वि०-१८८२)	२२६
२७	समन्तभट्टकी मुनिविद्या (मुनिविद्या-प्रस्तावना जुलाई १८४०)	२४८
२८	समन्तभट्टका स्वयम्भूतान (स्वयम्भूतान-प्रस्तावना जुलाई १८४१)	२४८
२९	समन्तभट्टका युक्त्यनुशासन (युक्त्यनु० प्र० जुलाई १८४१)	४२१
३०	रामचरणक कर्तृत्व-विवरण और विचार और निर्णय (११ फीब्र १८४० (प्र०-० वर्ष १ वर्ष १८४०))	४२१
३१	अनामदी आराधना, विचार १८४०	४८४
	(पु० १० वीं वाक्यपूर्व-प्रस्तावना)	
३२	अनामदी आराधनाकी दूसरी आनीन टीका-टिप्पणियाँ १० वर्ष १८४० (प्र०-० वर्ष १ वर्ष १८४०)	४८४
३३	कार्त्तिकेश्वरके और व्याधिभूतार, विचार १८४० (पु० १० वीं वाक्यपूर्व-प्रस्तावना)	४८४
३४	कर्मविमर्श और सिद्धसेन, ११ विचार १८४० (प्र०-० वर्ष १, विचार १८४०)	४८४
३५	निशाचरके और यतिवृषभ, विचार १८४० (पु० १० वीं वाक्यपूर्व-प्रस्तावना)	४८४
३६	ग्यामी वाचकेसरी और विद्याभट्ट, १६ विचार १८४० (फी० वर्ष १ और १० वर्ष १८४०)	४८४
	द्वितीय भाग, १७ जुलाई १८४० (प्र०-० वर्ष २)	४८४
३७	कर्मव्यवस्था राजाचौक नील साधन (नील-१८४०) जुल १८४०	४८४
३८	आर्य और श्रीकृष्ण, १० विचार १८४० (प्र०-० वर्ष २)	४८४
३९	समन्तभट्टका समग्र-निर्णय, प्रकाशित मुद्रि २ वर्ष २०१२	४८४

परिशिष्ट

१	काव्य-विज्ञाना सोपानपर विवरण	१८४	२	अर्द्धनामोपम-प्रस्तावना	४८४
२	स्वयम्भू-साधन-कर्म-न्याय	४८४	३	नामद्वयकर्म	४८४

2

भगवान महावीर और उनका समय

शुद्धिः कथं वा? अत्र योऽपि श्रुतिमनुष्यः ।
देशकालात् तत्रैव यदाऽपि यदाऽपि तदा तदा

महादीय-परिचय

है। यहाँ के निवासियों को एक बार मल्लिकार्जुन तिलक (विचार) परमाणु दूध-
दूध के रासों 'विद्यार्थी' के रूप में भी माना 'विद्यार्थी' के समर्थन के लिये
हूँ वे, जिनके द्वारा कम 'विद्यार्थी' भी थे। और जो वैद्यकीय रास 'पेटक'
की सुखी भी थे। यहाँ के बुद्ध काशी के भी सुखी भवोत्थानों के लिये निवास हूँ
कोर उनके अद्भुत उत्पत्तिके लिये पर्यटन-वा और भी प्राप्त हूँ। इस निवास के नाम-
समय उत्तराफ्रम-कुटी नामक था, जिसे अभी कहीं 'हलोकर' (दूध बरत है)

॥ योगेश्वर सम्प्रदायके कुछ ग्रन्थों में 'शक्तिमुद्रा' तथा 'वायुलिख' भी विज्ञा है। जो संभवतः कुम्भपुराण एवं दृष्टव्य मान पड़ता है। धन्यवा, उन्नी सम्प्रदायके दूसरे स्तरों में कुम्भशास्त्र-काले कुम्भपुराण नाम उल्लिख गया जाता है। यथा:—

“तुम्हारा नाम है कृष्ण, मैंने कहा है।” सा. वि. भा.

यह कुम्भपुर ही पावन नृपलपुर कहा जाता है, जो कि गन्तव्य के पञ्चापीक
जयनगर है।

† कुछ श्वेतम्बरीय बर्णोंमें 'बहु' निम्ना है।

उत्तरे—अनन्तर—दिनके) इस भाषणे की उत्पत्ति का विषय क्या है, और सोच यह क्यों उत्पन्नमान पर किया वे, जैसा कि धीरे-धीरे ज्ञान-साधने के विषय भाषणों प्रकट है :—

चैत्र-सिंहपक्ष-पक्षान्ति कारागंधर्गो दिने त्रयोदशाम् ।

जले स्नानस्तोषु स्नोषु सौम्येषु शुभसमये ॥ ३ ॥

—विश्वामित्र

नेत्र-पुञ्ज भगवान्क गर्भमें पति हो निजाके उवा उवा मन्त्र कुटुम्बीजनीकी मोड़ि हुई—उपनास, नेत्र, पादकर्म और वैभवं वहा—माताकी प्रतिष्ठा कर्मक यो, वह बहव ही में छोड़ कर प्रत्येक उत्तर देते लगी, और प्रकाशन की उत्पत्ति पर मूल-भाषित्वा अधिक अनुभव करने लगे । दूसरे जन्मसाधने साक्षात् साधक नाम 'चर्यदान' रखता गया । जल ही, और महावीर और चर्यादि जैसे माताकी भी समकः मुहि हुई, जो सब भाषणे एक समय प्रचुरित गया । अन्तिम ज्ञान होनेवाले कुली पर ही एक काधार रखते हैं ।

महावीरके पिता 'जात' बनेके कथित है । 'जात' यह बहव भाषाका शब्द है और 'जात' ऐसा शब्द बचाने की निम्ना जाता है । अन्तर्गत इसका पर्यायवाची होता है 'जात' । इसीसे 'चर्यावर्तनी' में भी प्रमाणवाचकाने 'चर्यावर्तनी-कुलेश्वर' बनेके शब्द महावीर भगवान्की 'जात' बहव भाषा में लिखा है, और इसीसे महावीर 'चर्यावर्त' बहव 'चर्यावर्त' की कहानी में, दित्तवा बौद्धादि ज्ञानीमें भी उत्पन्न भाषा जाता है । इस प्रकार हमके और ज्ञानोपरित एक समय जल या मुद्राके भी धर्मों में पाले 'चर्यावर्त' की बातें हैं । कदाचित् इस 'जात' का ही विवरण कर चर्यावर्त नामकी भाषावर्तनी नामकी बहवसे बचने 'जात' का रूप प्राप्त करता है । और इसीसे कुछ भाषाओं में महावीरके नामकी निम्ना हुआ विज्ञान है, जो गीत नहीं है ।

महावीरके जन्मस्थानकी पटनागोत्रमें की पटना, जल तोरते उत्पन्नजोष है—एक यह कि, जल पर और जल नामकी ही जल-कुम्भीकी उत्पत्ति—एक मोड़ि जाती लगे उत्पन्न हो गया था, जन्मके कुछ दिन बाद ही सब जन्मोंमें बापकी देखा तो बचने उभनमानने जन्म यह सब कहेह उत्पन्न हुए हो गया और जल-

अब मन्त्रालय सहायिका-कार्य ही प्रायः उनका हीन-अनुसंधान है, और हम तीनों प्रयत्नकर्ता। अब हमें भी ये तीनों कर रहना पड़े हैं। भारत के विचारका पहला स्थान राजपूतों के निकट विराजमान था। वे ही प्रभुतादि रंग पहचानों का प्रदेश माना जाता है। जिस जगत और व्यवस्था नामक विराट् अन्धकारों में कल्पन सहयोगी तथेयतुल्य अन्धकारों में हुए, धर्मबलुन नामी अस्तित्व का है। वहीं पर काल का प्रथम उपदेश हुआ है—कल-आत्मन्यसिद्धि का अर्थ। काल की दिव्य माला ली है और उस उपदेश का प्रथम ही काल के नाम पर अन्तिम हुई है। शब्दों में यह एक रास

[illegible]

स्वास्थ्यमन्त्रालये संशोधन विभाग, नई दिल्ली

शिव शंकर-वकाशेरी धम्मनिबण्ण स्वरसो ।

૧. સાત જાતનાં સાદક વસ્તુઓના અંકર થકી ત્રીજી પ્રવેશમાં આપેલ
 ૨. ૬લીની કોપીના આધારે અમલી કેન્દ્રના અંગત રૂબ રૂબની વચાનર
 ૩. આર વિદ્ય. તથા ૬. સાદક જાતના વસ્તુના સાદકી વાત કરી રૂ. બીજા તબીયે
 સાદકે તેમ જ બીજા વિદ્યાર્થી વચાન રી રૂ. અમલ

*यस्य अंगवर्णनप्रकारादिकं वैष्णवसिद्धिः सम्यक् ।

आहोरात्रं पुनश्च नृणां योऽवतारयति ॥१३॥

॥ अथ विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ॥

देशमन्त्रालो आह्वस विमलपण्यव 'नन्द' ॥१॥ ईवसुमति

॥ पञ्चान्तपुरं रामं विन्दते कल्कदानवः ।

सामान्यतया प्रत्येक देशातून दोन-दोन विद्यार्थी निवडले जाऊन त्यांना विदेशी भाषा शिकवण्यातून निवृत्त करून घेतले जाते. त्यांच्याकडून त्या देशातून निवृत्त झालेल्या विद्यार्थ्यांच्या संख्या, त्यांच्या शैक्षणिक कामगिरी, त्यांच्या वैयक्तिक गुणवत्तेबाबत माहिती घेतली जाते. त्या माहितीवरून त्या देशातून निवृत्त झालेल्या विद्यार्थ्यांच्या संख्या, त्यांच्या शैक्षणिक कामगिरी, त्यांच्या वैयक्तिक गुणवत्तेबाबत माहिती घेतली जाते. त्या माहितीवरून त्या देशातून निवृत्त झालेल्या विद्यार्थ्यांच्या संख्या, त्यांच्या शैक्षणिक कामगिरी, त्यांच्या वैयक्तिक गुणवत्तेबाबत माहिती घेतली जाते.

महावीरेश्वर (६०) त्वां कस्मिन् नमिषतोऽवस्त ।

इ वही लोकप्रिय आर्य-संस्कृत-वैदिक (सूत्रोक्त) के समय

पहिलीच उच पावतारके एक मुष्ट उवाचये क्ये. मां सनेक पयन-नरेंदरीं तया नाया प्रकरके कुलसमुद्रये मंडित वा, तय चारु बढीं ज्ञान-समं स्निह हो सके हो प्रानं परम मुकुटहनके उवाच मायनिवाव कजेके दुसराकुसुमाय जवशिष्ट रहे कजे-तयवी. श्याभिनयप्रसदी मां घनेन ज्ञानातरे वृक्ष पर कया होइ इय तरुह कर्तव्य बदि कम चर्याके तिनउ, स्वर्णि वज्रके धारव. धर्वाला-धरवे

[illegible]

“ଆସାଫହୋର୍ ଗର୍ମିନିଆନୁଆ ନବବର୍ତ୍ତମାନ୍ କହା ନି ନାମ ବିବରଣାୟେବ
ମହିକାନ୍ ସୁକାମନା ବିବରା ଶ୍ରୀମତୀ”

[illegible]

- (१) "दीक्षायोगशास्त्रस्यो वर्तुल्लक्ष्मणस्य विधायित
मनोप्राप्त्यायकमौनं ज्ञातः सर्वत्रापि जम्बुकः ॥"
'उत्तमवर्णमनसाय समवोऽप्य भिनसितः ।
नैर्धर्मपुरुषे निष्प्रेर्यकस्तस्मै इवाक्षय ॥' पद्मसिंहके, भाग २२४
(२) आचारान्, नैक्यान् शुचिन्धर्मकार, शरीरशुद्धिं च यदाति शृङ्खलं च
देवद्विमानिपुत्रिपरिष्ठां गुणान्वाचनं । --संतिशान्तमनसं ब्रह्मदेवं
(३) "शुद्धाऽऽयुष्कराचारवपु शुद्धाऽऽयुः साहजः ।
आश्वादीनोऽपि क्षान्तिमयस्यो ह्यन्यस्मिन् धर्मभाक् ॥" २२५

- साधारणवर्णदेव, आनाकर ।

इन सब बातों का सातवें अध्याय ६५ अक्षर है—

(१) शत्रुणां कथितेषु वेषेषु ये लोभे वने । बाण मोहयेत् । सर्वे प्राप्ते
योगेन हीनो भवेत् । पूर्य कर्णं विचित्रं दृष्ट्वा दृष्टकं संशयः । (६५-८८)
मनःकथनकायने विरे ज्ञाने वापि बन्धनं । सन्निहितं कर्णं च नये चोन्नीति
परिचयः ।

'शत्रुदेवतां सः धर्मं प्राप्य ज्ञानं मोहं । योगेन हीनो भवेत् । ६५-८८
परिचयः । ६५-८८ अक्षर ५२ ज्ञानं मोहं दृष्ट्वा दृष्टकं संशयः । ६५-८८
मनःकथनकायने विरे ज्ञाने वापि बन्धनं । सन्निहितं कर्णं च नये चोन्नीति
परिचयः ।

—तद्विषयः

(२) सत्त्वमर्षादिकं । शत्रुणां प्राप्तेन निर्मिता । पुत्रप्राप्तेऽपि
निराशा । श्री-वि-संज्ञानेति दृष्ट्वा । शरीरशुद्धिं च यदाति शृङ्खलं च
देवद्विमानिपुत्रिपरिष्ठां गुणान्वाचनं । --संतिशान्तमनसं ब्रह्मदेवं ।

—नीतिवाक्यायुक्त

(३) धामन भीरुः कानं धर्मं चतुर्मुखं चित्ते । भुक्तं ह्येनं । वन-धर्मार्थं
गन्तव्यं विष्णुः । आचारान्, नैक्यान् शुचिन्धर्मकार, शरीरशुद्धिं च यदाति शृङ्खलं च
देवद्विमानिपुत्रिपरिष्ठां गुणान्वाचनं । --संतिशान्तमनसं ब्रह्मदेवं ।

—साधारणवर्णदेव

भीरुः कानं धर्मं चतुर्मुखं चित्ते । भुक्तं ह्येनं । वन-धर्मार्थं

इसी तरह धारमका जो कोई किन्तु धर्मोत्तम विष्णुई नहीं देता, जिससे उसके कर्मे सुखी भाति कांयव की कथा, और न महज अधिनागदास लैनेकी चमकन ही कोई वसुध मेरे कहा या मकरा है—मोक्षका कारण इस धर्मके 'मनास' का कारण है। 'मोक्षका' नामा क्या है ?। वस्तुतः यह धर्मोत्तमों को सब को मनुष्य कांति इस धर्मको यथावत् है, जो 'वसुधका' नामक धर्म धर्मके उनसे होते हैं और इस हस्तित सब मनुष्य लभन है। 'वसुध' नाम 'वसु' का है—और कहे इस धर्मके द्वारा धर्मों निकालका पुन पुन धर्मिका प्राप्त है ।। इतने सिद्ध, निश्चित धर्मों की कोई भीता लभ हो उससे सुखी और मनेकी लभकी पुन-पुन करके कहे कथन मिला लेन तथा धर्म-दीप्त धर्मिके द्वारा धर्म उद्योगी मने काका भी इस धर्मधर्म पाई जाती है ।। और

धर्मिकधर्मिकी मेरी। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

काका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

१ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

२ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

—धर्मधर्मका धर्मधर्मका

धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

३ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

४ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

५ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

६ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

७ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

८ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

९ धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

१० धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका धर्मधर्मका ।। धर्मधर्मका धर्मधर्मका

—धर्मधर्मका धर्मधर्मका

—धर्मधर्मका धर्मधर्मका

महावीरके इस अनेकान्न-मज्जन-कथ में हमें यह सुनी सुन सीखनी है कि इसमें अनेक वचन, वचन ६४ रक्षणवाला अनुश्रुत भी यदि समझिए (वचनपरिण) हुआ अन्तरि-वस्तुन (वचनार्थके त्व-रूपक बुद्धिबोध समझानकी शक्ति) इसका समझान और परीक्षा करना है नो बरस ही उसका पान-पान्द कथित हो जाता है—कथन एकत्र-कथ विधासकता साधक हूत जाता है—और यह कथन कथना विधासकता सेना हुआ जो नम होरन भावना एवं समझावृष्टि बन जाता है। कथना को रक्षित कि कथनानुसङ्गात्मक साधन-वीथीय उपालब्ध होर अनुश्रुत हो जाता है। इनो बात को स्मारी समझानमें प्रथम निम्न वाक्य द्वारा स्पष्ट किया है—

कथं द्विजलपुनरितिचतुः समीक्षता ये समरार्थरिष्टम् ।

यदि ध्रुव स्वरिक्तमानश्रुती भक्तमभितोऽपि समस्तधनुः ।

गुरुश्रुतमथ

यह हम गीतके प्रचार-वचनके द्वारा भी वहीवही श्रुतन मही है, पूर्ण प्रचार-मके साधन कथना अनुश्रुत मीनन केन प्रचारमके द्वारा हुआ प्रचार मोर। कथने और महीनी एक गीतकी वरिष्ठता तथा इसके सुनीको अनुश्रुत कथने कथने वने के पान उपलब्ध। पूर्ण प्रचार विधा साधक वरिष्ठ है। प्रथम प्रकारकीय यह बात है कि व गीतके वचनानुसङ्गात्मकताकी शक्ति का, पूर्ण-मही मही कथन प्रचार भावनाके द्वारा, वचनकी गुरुश्रुत वरिष्ठता का उद्धार प्रचार प्रथम कथनी विधासा प्रथम के और अनु कथनी वरिष्ठता की विधि ओरकी समझान इतिहास केन ।

महावीर-सन्देश

हमारे इस वचन काय-कथना है कि इस कथनानुसङ्गात्मकताकी शक्तिकी—उत्तम विधासाधकता अनुश्रुत के, उपरान्त प्रचार करने और इनकी समस्त करानेके लिये उनका प्रचार करने प्रचार के। वचनके जीनसहितका वचनान, वचन और वचन करने पर मुक्त नरकानु महावीरका जो प्रथम अनुश्रुत हुआ है उसे भी एक सौरीय प्रक्रियाके निबद्ध कर दिया है। वही वचन कथनी विधासा काय की श्रुत अनुश्रुत न होता। उपरान्त वचनके है—गुरुश्रुत वरिष्ठता

भगवान् की कृपासे गिलाबोका मनुष्य इस संकेत और ज्ञान का स्तम्भ—
 शरीर और मन—द्वारा ब्रह्म का स्वरूप जाना जा सकता है—
 सत्य है। यह संकेत इस प्रकार है—

यही है महावीर स्मरण ।

विष्णु-वत्सल पर विश्वास जो प्रभुसर्वमं उद्यतः ॥ १ ॥
 'सर्व जीवोंको नृप कपनायो, हर उनके दुःख-पल्लव ।
 अमृतद्वय रक्तो मे किर्माने, हो करि नवों मे विराज ॥ १ ॥
 सैरीका नद्वार मेव है कीजे संविधि-विशेष ।
 और सुते पवन मणि जिससे, यही वन कनरा ॥ २ ॥
 मृगा पक्षी हो, पावने नही कभी खप संशय ।
 मृग मृगा कर प्रेम लागने लगे इसे पुनः ॥ ३ ॥
 तज पक्षम-वदनाद-दुर्गा, बनो वन विरोध ।
 रह प्रसन्नचित्त मृगा, की मुस मनन लक्ष्म उदय ॥ ४ ॥
 जीमो राग-द्वेष-भय-हर्ष-मोह-मयाव करोध ।
 धरो धर्म समक्षिण रह, श्री भुव-द्वयमें विराज ॥ ५ ॥
 अहंकार समक्षिण नरा, जो अवनतिवार विराज ।
 लक्ष्म-संक्षममें वल हो, पदात्ता लक्ष्म-भाष करोध ॥ ६ ॥
 'श्री' पदात्तक करो संक्षम, तज विष्णु-धर्मिणरा ।
 विष्णु-धर्मो मेव पवराकर, धरो मे करोध ॥ ७ ॥
 मन्त्रादी-मन्त्रिण मन्त्रो, श्री तमा भय संक्षम ।
 अहंकार पाने हरे दोहर, रह प्रसन्न न करो ॥ ८ ॥
 सादा रह सङ्ग-भोजन हो, सारा भूत-वत् ।
 विरक्त-श्रेष्ठ जायत कर कर मे, कर कम विरक्त ॥ ९ ॥
 हो सवका कल्याण, भावना पंथी रह हंस ।
 दया-संक्षम-सोप-रत चित हो, और न कुल आरोध ॥ १० ॥
 इस पर चलेनस ही योग, विकसित स्वस्व-धर्म ।
 अहंकार-जोनि जोगी हरे, जैसे उदित दिन ॥ ११ ॥
 यही है महावीर-स्मरण, विष्णु ॥

मान-धर्मशास्त्र १८३ वर्ष कतारि। ह्वा यह समुद्रमय विधि किवा है कि इस
६८२ वर्षके अन्तर्गत ७३ वर्ष ७ महीने बराबरी १११० १०२ वर्ष २ महीनेका
काल अवधि रहता है वही महावर्षके निर्वाचनप्रमाण समझानकी भाविः—अतः
संज्ञकी प्रकृतिः—अस्माकम् वर्षवर्ष ७३ है वर्षः चत्वारिंशत् वर्षावर्षके निर्वाचनप्रमाण
६८२ वर्ष २ महीनेका सा संवत्सरावधि प्रारम्भ हुआ है। साथ ही इस मान्यताके
विषे कार्यका निर्देश करते हुए, एक प्रयोग द्वारा साधारण यह भी
प्रतिपादन किया है कि इस १०५ वर्ष २ महीनेके समयमें समस्तमन्त्रः—सप्त
संज्ञकी वर्णन-संज्ञा—अतः देवदेव महावर्षका विवर्तमान—निर्वाचनः
संज्ञका लोक धर्मशास्त्र या ज्ञाना है। और इस समस्त धर्मशास्त्र-संज्ञा
प्राप्त्य करके इस विधि भी सुझाव को है। वर्णनके वे समय इस
प्रकार है—

[illegible]

५ ईश व माता ईश व पामा ५ व ५ इति पामाया ।

॥ अनामिका य मर्दिता आसंयुता तदा शम्बी ॥'

देव्य। आरा। नैवत्तदस्मन्वनपस्यै वरि। वर। १.१३

॥ इस प्रारम्भिक संस्करण को पुरातन है यही संभावनाएँ 'विचारवाली'
५१९५ नमक साबुन इकाइकी नियम धाराया पुरातन है

धनं न पत्नीं पंतं न वला। पन्थं न ह्येव नानुसंध्या

परिगणानुबन्धः २३॥ १॥ उ'पल्लो मयो रम्या ॥ ६२६ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो व्यक्ति अपने मन को नियंत्रित करे, वह अपने अन्तर्यामी के समान होता है।

इसके सिवाय, हरिवंशपुराण तथा चिन्तकप्रवाणमें भूतेश्वरी के चन्दापूजक प्रचार करने के लिये द्वैतवादी राजावर्गों ने अपनाये जो उपाय वे भई हैं उनमें एक तो यह सम्प्रदायके ४ नों प्राचीन स्थानों हैं । जहाँ इनमेंसे एक भूतेश्वरी के चिन्तकप्रवाणमें उक्त उपायों का प्रचार करने के लिये राजावर्गों ने प्रयास किया है । और दूसरेमें यह वर्तमान भूतेश्वरी के चिन्तकप्रवाणमें उक्त उपायों का प्रचार करने के लिये राजावर्गों ने प्रयास किया है । और तीसरेमें यह वर्तमान भूतेश्वरी के चिन्तकप्रवाणमें उक्त उपायों का प्रचार करने के लिये राजावर्गों ने प्रयास किया है । और चौथेमें यह वर्तमान भूतेश्वरी के चिन्तकप्रवाणमें उक्त उपायों का प्रचार करने के लिये राजावर्गों ने प्रयास किया है ।

[illegible][illegible]

स्वयंसेवा समिति प्रकल्पने इसके विरुद्ध न हो नहों भी संभवतो नर दया परका
आधाय करके दिया जाता चाहिये । समु ।

अब यह स्पष्ट हो गया है कि पौनःपुन्यवृत्त ६०४ वी ५ वहीन पर सप्त-
रात्रिक रात्रिकालको समाप्ति हुई और यह सप्त जो पञ्चमशतकी प्रवृत्तिसर
काय है—जैसा कि उद्धर आदिपर किया जा चुका है—तब यह सप्त माननी
पहला है कि एकवरात्रिका रात्रिकाल को पौनःपुन्यवृत्त ४०० वर्ष ४ वहीनके
अन्तपर लगता हो गया था और यही अन्तपरवृत्त प्रवृत्तिका काय है—नवी
शोकों आकाशमें १०४ वर्षका प्रवृत्त अन्त परता है । और १०४ वर्ष के एक-
वरात्रिको भी अन्तमें सप्त व रात्रिकालका सप्त वरात्रिकाल पौनःपुन्यवृत्त ४००
वृत्तवृत्त-अन्तपरवृत्तको पद अन्त परता था व अन्तपर काय किता वृत्त
पुनःपुन्यवृत्त काय चाहिये । विषयवत्त विषयकी पुनःपुन्यवृत्त सप्त है वह सप्त
वृत्त वृत्त पञ्चम शतकी को भी जानो गयो है । निम्न तब वृत्तको भी पञ्चम
और आकाशका यह पद है—

समाकृते पञ्चमशतवर्षे विषमवृत्ते

सप्तको वृत्तको प्रवृत्ति हि पञ्चमशतवर्षे ।

समाप्त पञ्चमशतवर्षे पञ्चमी पुनःपुन्यवृत्त

सित पञ्च दोष पुनःपुन्यवृत्त शास्त्रमन्त्रम् ॥

उपरी 'पुनःपुन्यवृत्तवृत्त' नामक सप्तको प्रवृत्त करने हुए, साह विज्ञा है
कि एकवरात्रिक सप्तवृत्तके अन्त तब १०४०५५ वष (वष) पौन १५५ था
और रात्रा पुन पुनःपुन्यवृत्त कर रहा था उस पञ्चम पौन वृत्त पञ्चमीके दिन
यह पञ्चमशतक विषयकी पञ्चम पञ्चम किता गया है । इसी पञ्चमशतक काय-
वृत्त अन्त परता सप्त 'पञ्चमशतकी' पञ्चमशतक सप्त वष प्रकाश दिया है
सप्तवरात्रिका पञ्चम शतके अन्तमें पञ्चमशतकी पञ्चमशतकी पञ्चमशतकी

हरे निपञ्चमशतके समाप्त जैनपुनःपुन्यवृत्तवृत्तवृत्तवृत्त ॥

इस पञ्चम, वष, विषयवत्त १००० के विषय दोष पर सप्तको प्रवृत्त-
का अन्तमें है और जो सप्तवृत्त सप्तका वृत्तका सप्तका वृत्तका सप्तका सप्तका
विषय, फिर भी इस पञ्चम शतके अन्तमें पञ्चमी पञ्चमीमें पञ्चमी है विषयमें कोई
कन्वे नहीं रहता कि अन्तमें आकाशमें प्रवृत्त विषयवत्तका ही अन्त

हो, किसानोंको एक मिनापेठ देना भी बन्दि विष्णुनगुरे उपेखको
 दिने लगे है और कह भारतभर चम्प बहाम्पेठ मिनापेठ है जो चीनगुरे
 मिना है और मिना एक निज वापेठ तबपु २२० दिना है जंगल
 उसके भेदन यमले प्रकृत है:—

“समु नव चण्णो मया गतस्व कलस्य विह्वलस्व ।”

[illegible]

सुखवाचि ७५ वाई गाढाई श्रीचरण पदक ।

मिदिदेगभाभागिपदा धाराव नयभतंभा ॥२१॥

સરકારે જાહેર કરેલું છે કે, જો કોઈ વ્યક્તિ ૧૦૦ કરોડ રૂપિયાની સંપત્તિ ધરાવે છે, તો તેની સંપત્તિના ૧% રૂાં ૧૦૦ કરોડ રૂપિયાના વર્ગમાં આવે છે. આ વર્ગમાં આવેલા વ્યક્તિની સંપત્તિના ૧% રૂાં ૧૦૦ કરોડ રૂપિયાના વર્ગમાં આવે છે. આ વર્ગમાં આવેલા વ્યક્તિની સંપત્તિના ૧% રૂાં ૧૦૦ કરોડ રૂપિયાના વર્ગમાં આવે છે.

निदिदायकाद्गद मृचिभवे मासमुद्रःमधीनः (॥७॥)

बल्को १७० नोबोसोईड और भी अधिक प्राचीन होकर पदार्थों के और कमकी प्राथमिकता से "वक्रांतरकाली विचार" मुद्रा का तथा बाजारों की बात की भी प्रभाव प्रभाव हो जाती है। ^{१८} अंतरांतरा यह माना जा सकता है कि यह भी कहीं तक बाजारों की मुद्रा के है। दूसरी १९ वीं शताब्दी में प्रचलित तथा उसके काल के में जो कालों की संख्या उसके बाद जा है, जिसके से कालों इस प्रकार है —

सूते चिकमभूगले मणविरानिमंजुते ।

हराभंकरेण ज्ज्जानाममंति मृगयुत्तरम् ॥१३५॥

सुश्रुतसमृद्धिः ॥ २५ ॥

—समन्तिकुलसद्वत्तुर्गिरि

[illegible]

● इन सूचक दि-टी समुदायके निम्न देवां सहज साह-साधन-पुनः 'सुखनदी' ५५ ४४३, ४४३ ।

† देखो ज्ञाने वा त्रिगुणा बह इतिह मेव मितक अनुवाय मेवमन्त्रित
मन्त्रोपपन्नं द्वितीय लीकं इत्ये कथुनं प्रकाशित दृष्टा है और स्वयं बौद्धधर्मी
एक बहना पर साधरी आपत्ति को दर्शाते है।

[illegible][illegible]

● नीरञ्जितं विहिंसते वज्रमिदं-दुष्प्रति-नामविराजितं ।

॥ अथ भक्तिरूपिणोऽप्युच्यते ॥

प्राक्षते गिरिं तत्र विपुलं विपुलप्रियं ।
 प्रतोषाथं स सांघना भानुमानस्य यथा ॥ ६२ ॥
 ततः प्रसुप्तशान्तैरावगच्छितस्तनः ।
 मगलसुराभिरुवाच जितेन्द्रस्य गुणैरिव ॥ ६३ ॥

इन्द्राऽश्विनायुभ्यान्वा कौशित्यान्वाय चरित्रना ।
 इन्द्रनाहमाऽऽवानाः सत्यसत्तानमृता ॥ ६८ ॥
 प्रथमं सतितां सर्वे निरवाणां दन्धि सतैः ।
 त्वत्प्राणवृत्तादस्त्वन्मना भयम् प्रातिदक्षिणे । ६९ ॥
 क्रम्यर्षी प्रमत्तितायै कृतदापयप्रसूय ।
 जितेन्द्र गोत्रवायुचक्षुर्वायोर्वा पयसाश्रयम् । ७० ॥
 स हि त्वत्पयसिना विरपसराश्वचक्षिना जिह्व ।
 ह तु भुविष्यतिरिरेण वाजसन्तपसापिना ॥ ७१ ॥
 आश्रमन्त्यासिते पथे सवृष्टिर्मिज्जिति प्रभु ।
 प्रातिदक्षिदि पथोऽहं सासन्नेयमुवाहरन् ॥ ७२ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

[illegible]

सुसोऽथ संवत्सेतुर्-सौरदिना-विमष-तद्विष्णु-विष्णुजिनिमिधव-
त्यथ मंगोर्हन्व चरुहि सुर्विरउवचारे शिवविष्णुभास्तेदेविष्णुाद्वरमया-

वराणान—इन्होंने कि केवलज्ञानके समुदाय होनेपर भी उस समय नीच-
की उत्पत्ति नहीं हुई ।

संका—दिग्धर्मादीनीं उग्र समय अवधि क्यों नहीं हुई ?

वराणान—अज्ञानका बंधाव होनेसे नहीं हुई ।

संका—सीधमें एतद उनी समय बलानुसार तोच क्यों नहीं की ?

वराणान—कालसायिके बिना बरेनक घण्टाव वा घोर उत्कर्ष उच खोबकी
वर्तिका बंधाव था ।

संका—कल्पे अदभुतके शिवने भूलागत बहल फेब है, उने खोदकर उच-
को उनेद करके दिग्धर्मादि क्यों उदर नहीं होनी ?

वराणान—अज्ञान ही रजसाव है, घोर रजसाव का बंधनबोधके योग्य नहीं
होता कल्पका बीज अमरक नहीं रहेगी ।

इस सबका समाधानने दिग्धर्मादि-वराणानुसार केवलज्ञानकी उत्पत्तिके दिव
वीरज्ञानवाली देवताके अ होने घोर ११ ई। स. २५०० वर्ष पहले १। १। १। १।
यानी प्रकार वर्तमान ही थावा है ।

वीरगर्भकृपावर्धने शिवगर्भकृपावर्धन नामक पुस्तक की । इसकी रचना
वेदविद्यापते श्रीगणेशजी केरत जीनी की । काव्यकृत निम्नलिखित श्लोकों
हुई है यह दाहू लाला जना है कि नीच जनता के दानवोंकी बली कापील गुप्त-
वीरगर्भ (११०००) के दिग्धर्मादि नामके । काव्य-कृत निम्नलिखित हुई है
वीर कि नीचके कुछ बातोंसे स्पष्ट है—

सुर शैलमशरुशैल गुणगणो बंधुमेजमाधुरिम् ।

मि उरुमि फलवत्तर वीरानुतो आरुक्तारो ॥६५॥

सामस वदुसमान सावितागणमास्य वदुसपदिवाण ।

अभिजोतकसत्तामि व उपात्ती घमसासिधम्य ॥६६॥

नीचे लिखित श्रीगणेशजी केरत जीनी द्वारा 'दीर्घ-कृपावर्धन' नामक पुस्तक
में जो लाला कनकदेव नामकने प्राचीनी अज्ञान कृपावर्धनके होनेकी घोर-
शासन-उत्पत्ति कहोनेका उचके कल्पोंमें देने और वर्तमानके होनेके शिवे अने
वाक्य नहीं हो सकता—आमक—ऐसी दाहू लाला जना है कि नीच जनता के
आमक कृपावर्धनके दिग्धर्मादि नामके राजाहमें औरकृपावर्धनके सुशेखरगु-

पाण्डोश्च निःश्वसन् भ्रमाकुलं संतप्तं उपदिशति ।

कृदोऽदुःखमिषं गुणं भवत्य उक्तं यं वारं य ॥ ७-२३ ॥

एक-द्वितीय केन्द्र-प्रधान १५५५ वायव्य मीरवासे में 'ह्यायानिक' शिपका की-२ कृष्णदेव तथा राजाजी के अन्तर्गत 'लोकप्रियता' संभवता उप-रोध दिया है।

इहाँ मूल गण्यो को 'अ' (क) अर्थ सात है। एक धरोरने परिहार-
विमुक्ति आदि करिवरन ओ पछल किन बा बरुन है। धोर त-क बरु निरु-
विमलता है कि मूलप्रदेव ओर पछावोन मन्त्रालन आदिविधि विधि प्रकरन
आदिना प्रतिफल किन है, विमल खेरीरवाचन की बरु प्रपारन है। अंग
कार्य गोप्यवोन केवल साधारण आदिप्रकृति वरु संतोषप्रदानावरो छेकरन ओष
समाधिकारि वरु प्रकृत-आदिप्रकृति प्रतिफल किन है। धरा ।

क्या ही एक नजर बाबाबाबूदेव बाबा के दो नामाओं पर इस प्रकार बैठे हैं:-

निम्नप्रार्थालोचनाभिनुक्तो नुक्तेन चेतमा ।

पठेद्वा भृशुयत्तुद्वयं कर्मभाव नियमान् सभाय । १८-६२॥

टीका—यत्तुद्वयं शास्त्रं शृशुवाद्वा चाचारविम्व कान्तुंभव । कय ?
नियमान् अनुकूलकर्मभाय । विनिमित्तम् । सभाय मवान् । १८वच
साक्ये, अस्मदेवमुक्ता इत्यादिवाच्योपायकनोपयोग। स्ववयसि कृतं वक्तु
कर्मिचारं न स्वयं विनिमित्तमाकलनकालेन गच्छन्ति तस्मात्तीव्रतनु दोषो
भवतु वा या भवतु न कर्माविचारोपदुष्टं न च कर्मकालरूपका प्रवृत्तयः
तेषु स च कर्मिचित्त इत्यत्र अत्रानेव नवीतिं दाता विदोमते । ते हि सर्वत्र
कर्मसातकर्मः । तथा चोक्तम्—

ॐ सप्तलक्षद्वये श्रुतौ जिनयोरादिमान्त्रयो ।

अपराधे प्रतिष्ठास्तिर्गोपमानां जिनिगिनाम् ॥

इदोपलाभ्ये दोष आशङ्क्यस्तरत्र वा ।

कर्मसंघातकालिनामिमांशानां जिनोशानाम् ।

इदोपलाभं नु मय्यनवधुतो वतीता न वा ।

दोषान्तरविचारा सप्त द्वाकाधर्मि विनिवदम् ॥

अथयमा अर्धवका अष्टमृदुद्वयुद्धवः ।

अथमनाभुजित तस्मात् इमांशान् मुनमि दम् ॥

दोषान्तरविचारा अष्टमृदुद्वयुद्धवः ।

ततः सप्त द्वाकाधर्मि विनिवदम् ॥

और श्रीपुण्यवादावच्छेद, कर्मने 'आश्रित्यार्थ' है, इन विचारेण एक एक
विनिवदः दोष दिला है—

सिद्ध सप्तमृदुद्वयुद्धवः आश्रित्यार्थानिनिवदवा

दोषोपलक्षणमया अभिमतः चंचलपानीत्यर्थः ।

ॐ ये पांचों तक मिलीं चंचलपानीत्यर्थः सप्तमृदुद्वयुद्धवः सप्तमृदुद्वयुद्धवः
मिया है, चिकनकी प्रथम १२वीं अक्षरपीठ परसे केवल दूरी सिद्धी जातिव सप्तमृदु
वच है । अतएव सप्त आश्रित्यार्थः चलो है जो बुद्धिवाचकी उत्तर १० वा नं० १२५
के १२६ का है इन्हें एक आश्रित्यार्थी उत्तर न मकरद्वयका अष्टमृदुद्वय
कहना चाहिये ।

तिथेसु अशराविशेषसु सैहस्य धावच्छायां ।

सेवास्तु शायकद्वयं निश्चेत्तु विदेहशरणं च ॥ ३ ॥

यथा देव वर्तमानस्तत्र कृत्वाता न महाकष्टे च यन्मत्तु चाग्निं तन्मेवैष-
स्वाप्तव्यं नन्दे दित्वा आनिवारं निरनिवारं च, तत्र निरनिवारं यदिचरता-
याधिकवेगवैराग्यस्य वारंरूपे तीर्थाचार्यकान्तौ यः कश्चिद्वाच्यंनःकलीयाद् यथ-
साधनीयं तत्कथं यच्चयावत्तिस्ती, आनिवारं कञ्चनकुपयति च पुनर्दत्तोन्मा-
रणं, उक्तं च—

साहस्य निरहभारं निरध्वंनरमंभवे च तं ददात् ॥

मूलगुणवाइत्यं साइवास्तुतवे च द्विवक्ष्ये ॥ १ ॥

'अथ येन' आनिवारं निरनिवारं च 'विनाशकः' इति प्रत्ययान्वितयोर्वै-
कार्योक्तये ।

एक प्रत्ययेन विज्ञेयं यत्तद्वैराग्यस्य आसि त्रैलोक्येण सगुणोक्तं यो
शेतेरस्यस्यतायाः साभाव्यतायाः ये देवो यो योक्तोक्तं विनाशकः आनिवारो
शेतेरस्यस्यतायाः विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं
विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः

अथानु ईदं तन्मत्तं कष्टं यत्तद्वैराग्यस्य त्रैलोक्येण सगुणोक्तं यो
शेतेरस्यस्यतायाः साभाव्यतायाः ये देवो यो योक्तोक्तं विनाशकः आनिवारो
शेतेरस्यस्यतायाः विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं
विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः यो योक्तोक्तं विनाशकः



श्रीकुन्दकुन्दानार्य और उनके ग्रन्थ

प्राकृत विज्ञान-जीवशास्त्र प्रसंगे उनमें अधिक ग्रन्थ (२३ वा २४) श्रीकुन्दकुन्दानार्य के सम्बन्ध में, जो २६ पादुके इन्होंने अपने ग्रन्थ में जोर देने के विस्तार-शेषमें श्रीमोक्षधर-स्वामीने समवसाहस्य तत्पर भाषण तोर्षकर-कृत तथा दशपादधर्मों की प्रतीति करनेकी कथा की गुणादि है। और जिसमें समस्त विज्ञानकी प्राप्त करने का तरीका बताया गया है।

यहाँ पर भी ३५ कल्पकार-ग्रन्थोंके प्रमाणों द्वारा और बहुत बड़ा साहसा है कि इनका मत ही—मोक्षधर की भाषाओंमें भी प्रमाणों की प्राप्ति में श्रीमोक्षधरानाथों के ही दृष्टिकोणोंके समान ही अधिक प्रमाणों की प्राप्ति है, जिसका कारण श्रीकुन्दकुन्दानार्य के अविनाशी हृत्वा की भाषा भाषा है।

७ वेदवेदाङ्गोंमें ही, अपने स्वरूपान्तर (वि० सं० ६६६) की विधि कोषादि, कुन्दकुन्द (पद्यनिधि) के शीर्षधर-स्वामीने विन्यस्तान् प्रण करनेकी बात लिखी है—

अथ वदन्तीद-सहो श्रीमदसर्वविद-विन्यस्तान्तरा ।

अथ विन्यस्तान् तो उपस्था कष्ट सुमन्तं प्रवाहति मन्त्रा ।

१ तस्यान्तरे द्विविधे मन्त्रे यः पद्यनिधि-प्रवर्तमानवान् ।

यौकोन्दकुन्दानिदुनीद्वयराक्षस्यमन्त्रादुद्वह-वात्सल्यः ॥

अथवेदवेदाङ्ग-विन्यस्तान्तरा सं० ४०

लब्धिवत्त्वोपयोग्यकदनानुकूलव्यापारगम्यमंगलमापरति -

सोपानात्म्य नेतारं भक्तारं कममूखां ।

ज्ञातार् विरूपनञ्चना श्रंदे मद्गुणस्यैव ॥

[illegible]

✕ ✕ ✕ ✕

¹⁴इति तन्मन्त्राधिराजं धातुशक्तं सिद्धात्मन उदुनी दृगमोऽप्यनाम (१२५५)

²¹ मूलमंगलव्याख्यासंग्रहे ॥२६॥ शिरं हृमे ॥

राजेश्वरीलिङ्गभक्त्यं स्तुतयः ५५५

एवमपि ननु इह तत्राह ॥ १ ॥

[illegible]

● कलौऽव्ययदेवैकनाथप्राणा श्रीपद्मवन्दे श्री भुविऽव्ययवर्दी ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

इमाणां शुभ्रपिण्डः पत्न्यीति तन्मये ॥

—अन्यसंभूतसंज्ञा ।

श्रीमद् उपासनायि दीर्घायो एक ही व्यक्ति स्वयं स्वयं भिन्न हो और अपनी निवेदनतापस्युक्त वस्तु तन्मयी कृतकृत्यता के माध्यम से बिना हो। यदि ऐसा है, तो यदि वह स्वयं स्वयं है, तो वह स्वयं स्वयं है। दीर्घायि व्यक्ति एक ही है। इसलिए कि कृतकृत्यता के माध्यम से वह ही वास्तव में है, और वे ही कृतकृत्यता के माध्यम से स्वयं स्वयं कृतकृत्यता है। और कि कृतकृत्यता के माध्यम से बिना बिना के ही है —

शोषणसदृशः यन्वयवाचां । शोषार्थश्च । तस्मादेव कुं-
 दिनीयमासौ दधिवान् बुगच्छिन्नं मातृवत् । अहं ॥
 कच्छुभारानि नु नो वरा । उभयावावराशब्देन एव । पिच्छ-
 मवयवम् । त-सदृशा । प्रियं । अथवा । आदिशब्दोपपत्तिवशतः ॥
 तद्विषयं वा । अतः । इति । अहं । भूरावाः । यस्मिन् । अतः ।
 पथी । यन्मर्मिनिवत् । नो । इत्यम । शोचश्चुकोदितवर्धकः ।
 कच्छुभारानि नु नो वरा । पथि । अतो । नदी । सक्तान्धवदी-
 म् । अहं । न । येन । अतः । अतीतं । शतक्रयं । मातृ । मुनिम् । तव ।
 मम । अतः । न । अतः । अतः । अतः । अतः । अतः । अतः ।
 अतः । अतः । अतः । अतः । अतः । अतः । अतः । अतः ।

महा सिन्धुदेवी ने १३ वीं शताब्दी में तुर्क शासक 'समर्कान' के विरुद्ध और दूसरी बार उसके पुत्र 'जिहांगीर' के विरुद्ध भी लड़ाई लड़ी है। इनके पट्टाभिषेक (शुभाभिषेक) के दो बड़े शिलालेख, गजाचल और बकरी-वाल शक्ति विद्ये हैं। इनका संरक्षण प्रत्यक्ष में नहीं होता। बृहत्सिन्धु 'एच.एल.एन.' की तरह प्रकाशित और संशोधित नहीं हो पाया है। आज यह दो लेखें गूढ़ाचल की ओर प्रस्थान कर चुकी हैं।



अथ भूमास्वातिमुनीस्वरोऽसावाचार्यशब्दोत्तरगृह्यपिबन्धः ।

श्रीलङ्का नं० ४९

भीमानुमास्वातिरयं कौशान्त्यार्धसूयं शब्दौचस्यर ।

प्रि० नं० १८६

श्रीः दुमास्वः निमुनिः शनित्रं चरोः सटोमे सप्तमार्धबंदोः ।

सुत्रीकृतं वेन भिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिषु गवन्देन ॥

पृष्ठ नं० १५८

[illegible]

३. 'महाभारत' का प्रकाशन करने की योजना के अन्तर्गत 'महाभारत' का प्रकाशन करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सत्यं वाचं धृष्टकृतां । पुनश्च वाचिभूमीचरम् ।

भक्तवत्सलरत्नाम्र कन्देष्ट गुणमन्दिरम् ।

१) सवित्रहृदय सुनीवनी म जो तत्त्वार्थबुद्धि से सुनीवनी नाम जगत्सर्वोत्तम विद्या है। पृथक् -

नस्यास्यसुवह्व स्वभक्तीकृतसंन्यासि ।

त्रयमाभ्यासिपद्मस्यार्था मिथ्यावर्गमिराद्युमान्॥

नैतिकता, न्याय, सत्य और विश्वास पराजित हो चुकने का दर्शन प्रतीत होता है।
 नतीजों में बड़ी गलत है और कड़ी सजा देना है और वे धुंधलाते हैं विस्मय
 को १५ में और १७ को अंतर्द्वारों में हो गये हैं

● देवा नैर्वाह्यं च मान ६ अनु ३-५ ।

सन्धानान् यथोचितपाठ्यवृत्तं प्रदत्त्वं स्वप्राक्षितप्रगमं कर्त्तव्यं कुर्वन्ति
 एतान्-सुश्रुतान् विहाय सर्वे कुल्यन्ते- पूर्वाचारकुल्यन्तान्वाहं, तत् परं
 आदिविद्वानां सङ्कटवृत्ताद्यन्वधानानां शास्त्रप्रसंगेभ्यः मुक्त्यर्थे
 शिरोहृतवाः सिद्धान्तेन शास्त्रममकणोत्तकमयं प्रत्यक्षं ।'

[illegible]

इसके बाद जो व्यक्तिगत या 'व्यक्तिगत' तथा सामाजिक व्यवस्था की न मानके, सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही है, इसके अन्तर्गत ही है, इसके अन्तर्गत ही है—

सूत्रः शृङ्गुह विरोदाभ्येतादौ वागृदीनसंघट ।

आम्र तिलस्य धस्य समुद्रं नृपं कथं ज्ञातम् । कलनस्य १.१॥

[illegible]

कर्मकाण्ड—श्री. कृतिष्ण विद्वान् । भूतौ. कर्मणि यत् तत्कर्मकर्तारम्
 कर्मयोगी है । भूतार्थकं इह वाक्यार्थः यत्—कर्तृवर्गान् सी है, यत् तत्
 साधु कर्म कर्ते है । कर्मणु योग्य इत्येते एव शब्द द्वावर्ग । एव च एकमात्र
 एवमेव वादकम् नही की गये है । अर्थ नानावर्गी तम् । कर्मोक्तं धान् सी
 जिन, दोक्तं संनानां विह वाक्यकर्मण् वाचं गते है, इह वाक्यार्थः यत् तत्कर्मकर्तृ
 इत्येक इह कर्मकर्तृवर्ग एवमेव ज्ञाने गृह्यते । अर्थ कृतिष्ण है ? कृतिष्ण भी नहीं
 इस प्रकारक कृतिष्ण कर्मकर्तृ विद्वान् है, एव किं विद्वान् कर्मकर्तृ इत्यर्थः कर्म ?

इस जगत् में हम प्रकटकर्त्ता हैं, किन्तु हम स्वयं उद्घाटनार्थ ही भिड़ना चाहते हैं कि हम जगत् में ही बार-बार क्या बनाते हैं।

इदं नान्यमिष्टानां सदृशं शान्तिविशेषं यत्नानां ।

निह्वयन्निर्मितशास्त्राप्रदः क्वचिद्वरमपि न म्यात् । ६१०

[illegible][illegible]

३. म. ५ अष्टम सर्ग उपाध्वनिः कित्ताकं बद्धा सप्त ट्येक एते आते
हे एत इव नामका विहा आत्मा सन्निभस्तु ३ ।

पाटोमरुपवीत्य भूमति केचिदुपवीत्य संतोऽपि

सन्निपातवि विवाहन परं भातिवम मोऽनु ॥ ५ ॥

टिप्पणः—अथ सूर्यसदृशकीर्तिना समुत्तरमे कल्पनादिपुत्रं भाग्य-
मानं पुरतः-पक्षेना निबन्धमाणा नानुसूयते उपास्वातिमापं स्वनी-
यिक इति स्मरंताऽन्तसमाप्तप्राप्तं वर्तित्वदुर्माविर्जनमात्रं कल्पयितुं कर्म-
साह निहवैः संगं धन्यमिति ।

अथाय कष्ट नम दुःखी भौ वाग्वरक तत्वांश ५५८—उप सूर्यसं
५५८—दुःख तो जयने से उप सूर्यो वाग्वरक उपास्वातिमापं स्वनी-

यन ५५८—सूर्यसदृशकीर्तिना समुत्तरमे कल्पनादिपुत्रं भाग्य-
मानं पुरतः-पक्षेना निबन्धमाणा नानुसूयते उपास्वातिमापं स्वनी-
यिक इति स्मरंताऽन्तसमाप्तप्राप्तं वर्तित्वदुर्माविर्जनमात्रं कल्पयितुं कर्म-
साह निहवैः संगं धन्यमिति ।

१५१ ५५८—दुःखी भौ वाग्वरक तत्वांश ५५८—उप सूर्यसं
५५८—दुःख तो जयने से उप सूर्यो वाग्वरक उपास्वातिमापं स्वनी-
यन ५५८—सूर्यसदृशकीर्तिना समुत्तरमे कल्पनादिपुत्रं भाग्य-
मानं पुरतः-पक्षेना निबन्धमाणा नानुसूयते उपास्वातिमापं स्वनी-
यिक इति स्मरंताऽन्तसमाप्तप्राप्तं वर्तित्वदुर्माविर्जनमात्रं कल्पयितुं कर्म-
साह निहवैः संगं धन्यमिति ।

कि उसके निर्वाण का प्रसार पूर्वजन्तु-ध्वनाम्बर मान्य नहीं है, और इस विषये साक्ष्य विपरीत है। ऐश्वर्यात्मक सुखपाठ और अर्थक प्रगति के संग मान्य स्वयं है जो सर्वोपाय मान्य समझाईको जिये हुए है। नीचे उनके कुछ अनुभव प्रकट किये गये हैं:—

[illegible]

मोक्षस्यार्थमाह सत्यं मुनेह जिज्ञासुभिर्ह ।

अनुकारसामंजस्यं भाष्यं लण्प्रत्ययस्य ॥१॥

आहं च दंशणं भेष आहिलं च मया मया

एवमभ्युत्थितवत्सलः शिष्योऽपि पुरःसति ॥ ७

नाजो च भवतु संवत्, हरिश्चन्द्र मय्यो नमः।

सर्वं प्रशस्तमुत्तम। श्रीवा गो.पू.सं. सं. ११११११ ॥

साधोण आगर्ह आधं हसणेन न मदते ।

ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਨਾਮੁ ਸ੍ਰੀਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥ ੨੭ ॥

ਸਦਾਕ ਦੇਵੀਯਕਾ ਕਾਥਾਨਾਮ, ਵਿ-ਐਫ-ਐਸ-ਐਸੀ ਸਮੇਤ, ਚੀਫ ਆਫਿਸਰ
ਫਾਜ਼ੀਲ-ਫਾਜ਼ੀਲ-ਫਾਜ਼ੀਲ ਦੇ ਅਧੀਨ ਵਿਭਿੰਨ ਤੇ ਆਪਣੇ ਵਿਭਿੰਨ ਸ਼ਰਮਤ ਪਦਾਂ ਦੇ—

सप्तमः अङ्कः । ३ ॥

[illegible]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

“अ किं तत्तत्तुल्यं नान्यद्विद पश्यन्ते । तं गृह्यते—संभवपश्यन्तुल्यं
१ तत्त्वपदार्थं च २ लिङ्गं ३ द्रव्यज्ञानं ४ कर्म ५ चेतनं ६ भाव
७ मान ८ चेत्यावहुं ९ चैव ।” (अनु० सूत्र ८०)

इसमें स्पष्ट है कि उक्त सूत्र और भाष्यका कर्म अनेकानेक स्वरूपों में
संगत नहीं है । वास्तवमें यह दिग्भ्रमरूप है जिसपरमूल पदार्थों की हर्षा नगहने
स्वभा है और इसका भाषाण बटखटखटके अनेकानेक जीवद्वाराके विभिन्न तौर
पर है ।

अनेदि वादस्तदहं जीवमयानां पश्यन्तुल्यं तस्य द्रव्याणि चट्ट
अतिशयानुद्वेगिणो वाचस्पतिरुच्यन्ते ॥ ४ ॥ न गच्छा । ५ ॥

संभवकवशाः द्रव्यपदार्थागुणयोः क्षेत्रानुगमात् सत्त्वानुगमा
त्काङ्क्षागुणयोः क्षेत्रानुगमात् आशानुगमात् अन्वेषणागुणयोः चैव ॥ ५ ॥

पदार्थागमनं योः क्षेत्रानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं
सत्त्वानुगमोक्तं वाचस्पतिरुच्यन्ते ॥

(१) स्वच्छे तत्त्वार्थसूत्रे सूत्रे ८० अन्वेषणं ‘अद्विदं पश्यन्ते द्रव्यपदार्थागमं’
वाचस्पतिः तो ४ ॥ वाचस्पतिः ही उक्त भाष्यमें ‘द्रव्यपदार्थागमं’ का उक्त
वाचस्पतिः द्वारा उक्तस्वरूप का उक्त योः क्षेत्रानुगमं तस्य चैव सत्त्वानुगमं चैव
स्वच्छे तत्त्वार्थसूत्रके सूत्रे ८० अन्वेषणं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं
वाचस्पतिः ही उक्तस्वरूप का उक्त योः क्षेत्रानुगमं तस्य चैव सत्त्वानुगमं चैव
स्वच्छे तत्त्वार्थसूत्रके सूत्रे ८० अन्वेषणं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं

‘आत्मसं तु वाचस्पतिः उच्यते—तत्त्वार्थसूत्रे ८० अन्वेषणं चैव तद्विषयं
तस्य सत्त्वानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं

उच्यते—आत्मसं तु वाचस्पतिः उच्यते—तत्त्वार्थसूत्रे ८० अन्वेषणं चैव तद्विषयं
तस्य सत्त्वानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं

उच्यते—आत्मसं तु वाचस्पतिः उच्यते—तत्त्वार्थसूत्रे ८० अन्वेषणं चैव तद्विषयं
तस्य सत्त्वानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं चैव तद्विषयं तस्य सत्त्वानुगमं

सिंहों गोशेर ही गायराहने सम्बन्ध रखते हैं अथवा मृगधर तथा मध्याकारके विषयी कल्पने हैं। यों इमानिये एक दोनो सचे तथ्यहीन होनेके विषय हैं ।
 अन्तः है विद्वत्त्व इस विषय पर कठरा विचार कल्प अन्तः-अन्तः अनुभवोंको प्रकट करने । अकस्म हुनः जीवन-मरणात्मक विषय बातोंको धिरे विष्टो समय पाठकोंके सामने रखना चाहता ।



और योचने । इसका वह अन्तःकरण देखना चाहिये जो अन्तः ही उनके अन्तः । नर
 अथवा अन्तःकरण प्रकाशित हुआ है ।

[illegible][illegible][illegible]

५ जैसे मानवतन्त्रा कही 'नामन्त्र' और इही 'कुम्भ'वाकर इन पर्याप्त-
वाणी सम्मेलन पासो जाता है । और प्रशान्तका 'अर्चन' वह वास्तविक धर्म
पाय है जिसका बहुत कुछ लक्ष्य 'अर्चन' प्राप्त है ।

सन्तानधनं नात्यान्त्यये हि जपे वाक्तां स्वर्गपे नैव विन्दन्त्यस्मि श्रेयसः
 भिक्षुः कल्पेन कृतं दिनात् न च नृकं पतिं यत्तत्र नैव नित्यं प्रेम वा ध्यायन्त्यस्य
 दोषः सः न च नृकं पतिं यत्तत्र नैव नित्यं प्रेम वा ध्यायन्त्यस्य
 यत्तत्र नैव नित्यं प्रेम वा ध्यायन्त्यस्य

[illegible]

* इस कार्य का प्रारंभ ३ मई की रात अर्थात् वेराकेस सिस्तेना द्वारा (Mayer & M., 1968 p Ind. Ant. 1X, 22) देखी, विनोद सिन्हाजी के साथ संस्था का नाम, विनोद सिन्हाजी द्वारा किया है।

In ancient China, writes the author of *Overland to the East*, when a Chinese merchant came by land to sell his wares in the West, he must leave the family and children at home and travel alone, exposed to hardships in the vast wilderness.

यौ १ इत उपरान्त नानि मन्त्रावली प्रकरनेयं अपनी कविताको बहुत ही उपयुक्त
इकर को है

समन्तभद्रादिस्त्रीन्समावृत्तां मूर्त्तयः सत्तान्मूर्त्तयः सम्यक् ।

ननमि सन्निभस्यैव शास्त्रात्, न मन्त्रे किं शान्तयाद्वा ज्ञानः ॥१॥

(२) प्रमत्तान्मूर्त्तयः सन्निभस्यैव शास्त्रात्, न मन्त्रे किं शान्तयाद्वा ज्ञानः ॥१॥
नानि मन्त्रावली प्रकरनेयं अपनी कविताको बहुत ही उपयुक्त
इकर को है

श्रीमत्समन्तभद्रादिस्त्रीन्समावृत्तां मूर्त्तयः सत्तान्मूर्त्तयः सम्यक् ।

ननमि सन्निभस्यैव शास्त्रात्, न मन्त्रे किं शान्तयाद्वा ज्ञानः ॥१॥

(१) प्रमत्तान्मूर्त्तयः सन्निभस्यैव शास्त्रात्, न मन्त्रे किं शान्तयाद्वा ज्ञानः ॥१॥
नानि मन्त्रावली प्रकरनेयं अपनी कविताको बहुत ही उपयुक्त
इकर को है

समन्तभद्रादिस्त्रीन्समावृत्तां मूर्त्तयः सत्तान्मूर्त्तयः सम्यक् ।

ननमि सन्निभस्यैव शास्त्रात्, न मन्त्रे किं शान्तयाद्वा ज्ञानः ॥१॥

(२) प्रमत्तान्मूर्त्तयः सन्निभस्यैव शास्त्रात्, न मन्त्रे किं शान्तयाद्वा ज्ञानः ॥१॥
नानि मन्त्रावली प्रकरनेयं अपनी कविताको बहुत ही उपयुक्त
इकर को है

नमः समन्तभद्राय सद्गते कविचन्द्राय ।

सद्गोपस्यैव निमित्ता, कृष्णाय ॥

(३) इत मन्त्रावली प्रकरनेयं अपनी कविताको बहुत ही उपयुक्त
इकर को है

[illegible][illegible][illegible]

↑ निम्नलिखित के अंतर्गत वेबसाइट कल्ले है जो 25/11/2016 को राजधानी की
कोई जानकारी वसंतन गांधी सादर है। गंगा नालेन कोषों के अंतर्गत
का अर्थ है कि गांधी जी के 100 वीं जन्मदिन को या तो मूल्य या
कोई किताब मुद्रा धरणादेवता निम्नलिखित संस्थाएं प्रकाशित कर चुकी
हैं। नीचे दिए गए कार्यकारण वृत्तिकाएं के अंतर्गत एक या दो या तीनों
City of Kanpur फिर है वह जो लोक नदी है।

प्रत्यक्ष हो गई थी जिससे वे दूसरों को बाधा न पहुँचाते हुए, सीधे-सीधे आप-सीधे-सीधे काम करने लगे थे । उस समय-ही कुछ बाल्य इन प्रकार है—

सिद्धन्तमद्वयं मुनिर्जीवात्पदविद्धः ।

अथ कान्तश्लोकः ॥

.. समनमहादेवो जीवाः प्राणपरिहृतः ।

विश्व-इक्याव्यास-दृश्य १

समाप्तमद्वयमिति शब्दः पुनर्द्वयमिति शब्दः मध्यममिति शब्दः

अतुल्यलक्षणमवस्थामं पश्यन्

—५॥ आद्वैतसूत्रम् ॥

८३) हा प्रश्न मधील १५३६ चे निम्न अनुवर्तीही मजबूत आहेत. याचा फायदा घ्या. तुम्हाला
 कधीही याचा उपयोग न येईल असे वाटत असेल तर त्याचा उपयोग न करावा. (८३)

समाप्त :- छात्रों के माध्यम से प्राप्त हुए विद्यार्थियों की संख्या १०० है।

"It is evident that the (Santabhadra) was a great laborer who tried to spread it and wide four countries - Christians and that he met with no opposition from other sects wherever he went."

[illegible][illegible]

अध्याय ३, पृष्ठ ३६

मिले सन् हो जाते हैं और दूसरेकी भुक्तिवृत्ति बालको को यादकर बहती हैं। फिर भी सम्बन्धमय सपने ऐसा प्रायः कुछ भी न होता था, वह क्यों खरब होता है? इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि १८४६-१८४७ होने को उल्टा है और जिसका कारण के लिये बालक को उत्पन्न होने १

[illegible]

* आपकी इस बंदाई को कलकत्ता में ही पढ़, वसूली तो पर उस
आकार है—

अज्ञानात्तु नानाकाराः सत्त्वगुणरूपानि भवेयुः ।

प्ररषणमसिद्धयनेदमगुह्यं, अष्टौ=द्वौगमेर्हौ । १५११ ॥ १५११ ॥

एषः प्रसिद्धिः कलादिहेतुः श्री. ५८३ नमः प्रसिद्धिः प्रसिद्धिः ।

स्वमात्मनः किं न वरस्त्व हि हि यसावकाशः अपि तु। प्रथमः (३५)।

स्वच्छन्दान्नस्य । स्वभावाद्गुरुत्वाच्चाल्पयोगेन ॥

निर्णयः सीतामधुकिना-नानुवृत्तिवाक्येन 'विभ्रमन्ति' ॥३॥४॥

—सुसङ्गमः ३

[illegible][illegible]

वीथी भवनिकम्-१, एलिटोपराष्ट्र, दार्जिलिङ्ग नगर, कोलकाता, पूर्वा ।

संस्कृत-लोकनयन परिधानमाला : आचार्यवर्त्मन् शरितोषि शुभभाषणम् ॥

—सुखसुखी ।

श्री-रसतलपत्र बने श्री, मुक्त-मुखावन्की जीवने बन्ने 'स्वाध्यास' मुक्त-
विचारकने दण्ड, पावकी रसतलपत्रके बन्ने विचार है ।

तत्पुस्तकस्य अङ्कन 'बहुनहसी'-विद्यापद-सम्पादिका'

† ननु नञ्वायमपहृष्टे 'विज्ञापयन्ति' ।

† श्रीगणेशाय नमः-नामं कृत 'महत्कहलो' ।

“आचार्यैश्च ममन्तभद्रास्तुभुवनंइच्छन् कलौ
 जैने श्रीम ममन्तभद्रममचक्रुः” समाप्ताभुद्रः” ।

— ५४ — श्री विष्णुनेह

इसके सिवाय न्यायमयूक्त गान्धुंके इनही शिवांग ३०-१-४८ में जो
 एक सं. १०८५ का लिखा हुआ है, भवभूतमयूक्त साकल्य वह उत्पन्न भवता है
 कि ये श्रु. केवल-संगान्को उन्नत करवाना और सफल-विशेषों के विधि में
 सदा

धुनकवालिगालु उल्लवसु अर्तिनिर. आहू इत्यधिकं तस्यन्ता-
नातव समन्तभद्रं ज्ञातव्यं तस्यभुक्तं समस्तविद्यानाथगण ॥

[illegible]

श्रीपद्मसामवाभिगतु तत्त्वज्ञानं सर्वविद्यानु श्रद्धापात्रक भूति-
सेवितगलु वक्तु सिद्धसाधनम् आगं नमः । यन्मं मरुतगुरुं पाणि
समभामरु-स्वामिगतु सम्भारः ।

इन दोनों संस्थाओं को कड़ी तलाश प्राप्त है कि स्वामी भगवान् इस कलितान्तरे जीवनार्थको स्थापना(संस्था) — धारापर। तबनि करनेवाले हुए हैं। संसार पाण्डुके उतहें ? मित्राचार्य, आचार्यके बाद कौमुदीके प्रवर्तको साहित करने हुए, आचार्य 'कविप्रकाशमन्त्र' और 'शिवसूक्त'ों प्रकाश है —

४. क. देश) 'मण्डिकिया कर्णाटिका' विष्ट मन्त्रिणी (E.C. V)

‡ इस संगीत लीला रचयित जगदीश मल्लिकारजुन स्वामी हैं—Increasing that doctrine a thousand fold Sampatābhadrā swamī arose

ई पर विनोदसिंह अंक सं. १६६ का सिल्ला लगा है (E.C., VI.1)

[illegible]

सद्वन्तर्गतं यद्वाच्यं सत्त्वं वास्तवम् ।

ईशागमनं वनाय ध्वजो ईशागमः ॥

—वार्त्तव्युत्तरम्—

[illegible]

१. समस्याओं का निर्धारण : यह स्पष्ट होना चाहिए कि हम किस समस्या का समाधान करना चाहते हैं।
 २. समाधान के विकल्पों का चयन : समस्या को हल करने के लिए हमारे पास कई विकल्प होंगे। हमें उन विकल्पों का चयन करना होगा जो सबसे अधिक प्रभावी हों।
 ३. समाधान के कार्यान्वयन : चयन किया गया समाधान कार्यान्वयन में लाना होगा।
 ४. परिणामों का मूल्यांकन : समाधान के कार्यान्वयन के बाद हमें परिणामों का मूल्यांकन करना होगा कि क्या समस्या का समाधान हो गया है।

भातमरीदि नोऽप्येहि सत्तमीमि मारसी.

मनसीवि पाउतीभि चमणीसि हेऽसता ।

कृष्णजी प्राणिके त्रिते में उन पर प्राणिवर्गीय। प्राणों में ही हो बुद्धि
है। एक वैज्ञानिकदृष्टिकोण प्राण के अन्तर्गत यह बुद्धि है।

[illegible]

बीकरी व चीकरी व सयसौसयदायिनी

सायराजपूजितां समन्तमद्रथावतो ॥ ८ ॥

इमं इत्येवमप्युक्तं यो यन्तुति ताव समन्तमद्रके वातो अपत्तौ
 श्रीर त्रयंके विपत्तयः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः
 किंवा ताव ते किं सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः
 कीर्तिता देवताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः
 इत्येवमप्युक्तं यो यन्तुति ताव समन्तमद्रके वातो अपत्तौ
 सायराजपूजितां समन्तमद्रथावतो ॥ ८ ॥

यत्तु ताव ते किं सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः
 इत्येवमप्युक्तं यो यन्तुति ताव समन्तमद्रके वातो अपत्तौ
 सायराजपूजितां समन्तमद्रथावतो ॥ ८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां विविधा विमर्शिनः ॥

समन्तमद्रथावतो ॥ ८ ॥

यत्तु ताव ते किं सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः
 इत्येवमप्युक्तं यो यन्तुति ताव समन्तमद्रके वातो अपत्तौ
 सायराजपूजितां समन्तमद्रथावतो ॥ ८ ॥

यत्तु ताव ते किं सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः सन्निविताः
 इत्येवमप्युक्तं यो यन्तुति ताव समन्तमद्रके वातो अपत्तौ
 सायराजपूजितां समन्तमद्रथावतो ॥ ८ ॥

सोप ग्याय. घन्नासको बहुधातवा घाट्ने हुँ, धीर ब्रह्म पदार्थकै गुण संशोभे
जालेको जिनको इच्छा हो उनकै जिवे मह तोय इति श्लेषासकै ब्रह्मस्य रूप्य
घासको गुणकसकै नाथ, कहा गया है। उनकै शिवाय, निज स्वभावको घाटने
श्रेष्ठ दिया हो उन ब्रह्म-स्वयं को दूसरसि संस्तरवन्नाको तोनना कम भी
हो है सोय प्रय निशं बहु प्रलोचन को उस स्वभावो उत्पन्निक। १३ म्नु है ।

[illegible][illegible]

सुमन्तमर्षं सर्वेषां तनुषु योऽगम्यात्मानम् ।

निमलं यशःशाल्यम् अभूत् मदनप्रभं । ७५।

—निजधनसंश्लेषः

[illegible]

श्रीमृजसंघन्यामेन्दुभारिने यावितीर्थकृत

देशे समन्तभद्राया मुनिर्वाधितेति ॥ विज्ञानयोग प्र०

श्रीमृजसंघन्यामेन्दुभारिने यावितीर्थकृत

देशे समन्तभद्राया जीवायास्तद्विद्वत् ॥

त्रिनेत्रकल्याण-पुष्प

तत्त्वं च समन्तभद्रायास्तद्विद्वत् काले जाग्राभिर्दिग्बिम्बविष्णुतीर्थकर-परम-
देवेन 'कालो ह्यश्वत्थप्रियं च' (उत्पाद १२) नकरं च गुरो यत् (६४) ॥

अथवा यत् १२ गुरो यत् १०

कुंवा भीमजिनेत्यालां तास्तेभ्यः प्रभावता ।

स्वर्गोत्पत्तिर्वाधिते यावितीर्थकृतो मुनिः ।

—विद्वत्पुत्रं यागपञ्चकनदीयं

यागं यावितीर्थकृतं च १२ समन्तभद्रायाभिगन्तुं (१२) वाचकित्वे)

अथवा १२ गुरो यत् १० वाचकित्वे च १२ वाचकित्वे च १२ वाचकित्वे च १२

संज्ञितं समन्तभद्राया विद्वत्पुत्रं मुनिं विद्वत्पुत्रं ॥

श्रीमृजसंघन्यामेन्दुभारिने यावितीर्थकृतो मुनिः
तत्त्वं च समन्तभद्रायास्तद्विद्वत् काले जाग्राभिर्दिग्बिम्बविष्णुतीर्थकर-परम-
देवेन 'कालो ह्यश्वत्थप्रियं च' (उत्पाद १२) नकरं च गुरो यत् (६४) ॥

॥ तत्त्वं च समन्तभद्रायास्तद्विद्वत् काले जाग्राभिर्दिग्बिम्बविष्णुतीर्थकर-परम-
देवेन 'कालो ह्यश्वत्थप्रियं च' (उत्पाद १२) नकरं च गुरो यत् (६४) ॥

॥ तत्त्वं च समन्तभद्रायास्तद्विद्वत् काले जाग्राभिर्दिग्बिम्बविष्णुतीर्थकर-परम-
देवेन 'कालो ह्यश्वत्थप्रियं च' (उत्पाद १२) नकरं च गुरो यत् (६४) ॥

[illegible][illegible]

भवत्यर्थे तेन यथाऽपि कथ्यते ॥ १ ॥

[illegible][illegible][illegible]

॥ इस पर श्री विनोदबहादुर द्विवेदी 'अहिंसासंग्रह' के प्रथम संस्करण में लिखते हैं—“इस अनेकपक्षी व्याप्त मानव जाति के लिए (संस्कृत भाषा में) अहिंसा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका ही नहीं परन्तु शास्त्र—इसके पहले हीमेंनाले—अहिंसकता ही मान्य है।”

हैं तत्पार फिल हो, जो जेनेके स्थान पर ऊपर बायेले रहने ही पाँऊ हो पोर
 जिनसेले तनार कर हो ऊपर भिज्जुबुके बेट करके साथ तनव संग्रह तनव
 जाहुत हो उमे कपन आकाले निव फिल दल ५ धारन वरनी कोरे तनव
 न हो । दल साबरो मुनिगे दलीगको कुन भी वाना न पवने । दल भोजन
 लिक कउने व । धोउनक मसल योः ५।-बानमिन दलीमेंले ऊपर वरनी ही दोष
 मानुस पर दली का कबला कोरे धारनक समान उडिषा । बरत वा न व
 सुदीम उनी तन फोडवक दल ६। ये धोए दल समथके दल १। ननर
 दल जो मैल नहने नीले व । ननर लवण, ५ दल भोजन । धोउने पानु
 दल हो । ५। ५। ननरक मुनिगको नवे १२ दल ननर भोजन । धोउने पानु
 दल । ननर दल ६। ननर दल ७। ननर दल ८। ननर दल ९। ननर दल १०।
 दल ११। ननर दल १२। ननर दल १३। ननर दल १४। ननर दल १५। ननर दल १६।
 ननर दल १७। ननर दल १८। ननर दल १९। ननर दल २०। ननर दल २१।
 ननर दल २२। ननर दल २३। ननर दल २४। ननर दल २५। ननर दल २६।
 ननर दल २७। ननर दल २८। ननर दल २९। ननर दल ३०। ननर दल ३१।
 ननर दल ३२। ननर दल ३३। ननर दल ३४। ननर दल ३५। ननर दल ३६।
 ननर दल ३७। ननर दल ३८। ननर दल ३९। ननर दल ४०। ननर दल ४१।
 ननर दल ४२। ननर दल ४३। ननर दल ४४। ननर दल ४५। ननर दल ४६।
 ननर दल ४७। ननर दल ४८। ननर दल ४९। ननर दल ५०। ननर दल ५१।
 ननर दल ५२। ननर दल ५३। ननर दल ५४। ननर दल ५५। ननर दल ५६।
 ननर दल ५७। ननर दल ५८। ननर दल ५९। ननर दल ६०। ननर दल ६१।
 ननर दल ६२। ननर दल ६३। ननर दल ६४। ननर दल ६५। ननर दल ६६।
 ननर दल ६७। ननर दल ६८। ननर दल ६९। ननर दल ७०। ननर दल ७१।
 ननर दल ७२। ननर दल ७३। ननर दल ७४। ननर दल ७५। ननर दल ७६।
 ननर दल ७७। ननर दल ७८। ननर दल ७९। ननर दल ८०। ननर दल ८१।
 ननर दल ८२। ननर दल ८३। ननर दल ८४। ननर दल ८५। ननर दल ८६।
 ननर दल ८७। ननर दल ८८। ननर दल ८९। ननर दल ९०। ननर दल ९१।
 ननर दल ९२। ननर दल ९३। ननर दल ९४। ननर दल ९५। ननर दल ९६।
 ननर दल ९७। ननर दल ९८। ननर दल ९९। ननर दल १००।

कै कि यत्र धाम कृष्णचर नृपं मन्त्रिणा वाचसा कृत्यं यत्रा प्रदानं कृतं
श्रीं गुरु धामोऽयं त्वं किं मे धाम-स्युक्तं श्रीर नृपः त्वत्कृतं निवेष्टे कृत्यं
समं ह्ये तत्तु

यत्र १५५५ २५ विवाहना इति श्रावणाद्यो मन्त्रक मुनिः कृतं देवैः १५५
श्रीं गुरु, इति १५५५ २५ मन्त्रक मुनिः कृतं देवैः १५५ २५ मन्त्रक मुनिः
किं यत्र धाम कृतं नृपं मन्त्रिणा वाचसा कृत्यं यत्रा प्रदानं कृतं
श्रीं गुरु धामोऽयं त्वं किं मे धाम-स्युक्तं श्रीर नृपः त्वत्कृतं निवेष्टे कृत्यं
समं ह्ये तत्तु

मुनिः कृतं देवैः १५५ २५ मन्त्रक मुनिः कृतं देवैः १५५ २५ मन्त्रक मुनिः
श्रीं गुरु, इति १५५५ २५ मन्त्रक मुनिः कृतं देवैः १५५ २५ मन्त्रक मुनिः
किं यत्र धाम कृतं नृपं मन्त्रिणा वाचसा कृत्यं यत्रा प्रदानं कृतं
श्रीं गुरु धामोऽयं त्वं किं मे धाम-स्युक्तं श्रीर नृपः त्वत्कृतं निवेष्टे कृत्यं
समं ह्ये तत्तु

यत्र १५५५ २५ विवाहना इति श्रावणाद्यो मन्त्रक मुनिः कृतं देवैः १५५
श्रीं गुरु, इति १५५५ २५ मन्त्रक मुनिः कृतं देवैः १५५ २५ मन्त्रक मुनिः
किं यत्र धाम कृतं नृपं मन्त्रिणा वाचसा कृत्यं यत्रा प्रदानं कृतं
श्रीं गुरु धामोऽयं त्वं किं मे धाम-स्युक्तं श्रीर नृपः त्वत्कृतं निवेष्टे कृत्यं
समं ह्ये तत्तु

पेंलिहर्षसिद्ध कपोतोचन

[illegible][illegible]

पूजा के समय निम्नलिखित मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए।

शिवो नमो गिरिवर्जनाय शिवाय नमः शिवाय नमः ॥

કેવલજી તે સ્ત્રીગત્ત રાજસુક્ષ્મ અધીનર્થનો સવન કુમારો ।

—[४६] १३५:५

संस्कृत शिल्पशिल्पशास्त्रादिभिरिति तेषु अथवा शास्त्रान्तर्गतप्रति

[illegible]

यत्रासंस्पर्श-शून्यमेव

ॐ स्वस्ति मे 'कौटिल्य' कृतं यादृ रूपां भद्रं भवति ॥

‡ 'वैनासिद्धान्तभाष्यकर' निरुक्त ३०० पृ० ३ = ।

५. यह पद्य 'विनिर्नयक' शब्दाभ्युदयार्थे प्रयुक्तं नैव शेषा वस्ता ॥

सम्पन्नभद्रका एक और परिचय पद्य

स्वाधीनताप्राप्तिके साहस-परिचय-वैभवं स्वधीन मन हो हो एवं पद्य मिल
 यो मे भी राजसभाओंमें ७ भागों सम्मानन करने को बड़े हैं— एक 'पूर्व पाट'-
 सिन्धुदशभक्तगद्गे सेरी दश। सावित्रीजी काका है २३ कन्हारकी राजसभा-
 में वालो पूर्वपाट-बोकाभाकोक उल्लेख करने दूना कहा गया था की पुत्र
 'कोकया' मन्नाटकाई ३३ नमस्ते १९३३ दशा है जो किन्हीं युवकों राजसभा
 में बहा हुआ नाम पढ़ा है की। 'अबमें विभक्त राजसभा' जगने। अतिशय साधु-
 वैपरीर उत्तम करने हुए। अन्तको अन्तर्गत-बनारसी प्रकट किया है और और ही
 सब पद्य किता है कि निघ किता। ओ अदभ्य मति तो २३ भागव साकार
 काव करे।

हानने सकलसङ्ग-साधनोभ मन्नाटक करते हुए २३-सम्माननकी प्रतीक
 प्रतिपत्ति ओम्में मुक्त दशकोके दशवनी मन्नामे एक पैसा दानितके-सोखुं
 हुंदा किता है अतिशय बंध उन्नेद-१९२९ आदिनी सप्त-ओ नी प्रभा-सम्माननकी

† पूर्व पाट-सम्माननकरे मेरी बड़ा मतिता.

यमसायमसपत्तिमन्नाट-किन्ने कीर्तनकरे औरसे

आलोन् कन्हारक मन्नाट-विशालट-प्रकट,

नमस्ते निचयसम्माननकरे । साधु-निचयकिन्ने ॥

† साधु-सम्माननकरे मन्नाट-विशालट-प्रकट,

हुंदा-यमसायमसपत्तिमन्नाट-किन्ने कीर्तनकरे औरसे

आलोन् कन्हारक मन्नाट-विशालट-प्रकट,

नमस्ते निचयसम्माननकरे । साधु-निचयकिन्ने ॥

स्वामी सप्तन्तभद्र धर्मशास्त्री, तार्किक
 और योगी जीनों से

श्री प्रभाकराचार्यनं श्री शङ्कराचार्यनो ग्वाप्तो नमनपादयो इति सुविधं किञ्च
है, यद्वा शान्ताना-यनय शौर शम्भुके गौर एक शनिनायक इय प्रभर है-

“अस्यसन्ततमद्रुत्तमां रत्नानां रक्षणायावज्जगत्पञ्चसकलस्य सन्ध-
स्पर्शानविरसनायां पालनायावज्जगत्पञ्चसकलस्य साधनं कर्तुं कामो
निर्विघ्नः । तादृशपरिस्माद्व्यापितं पल्लवभित्तनिपदेवताविरोधं नय-
न्मुदेकाहः—”

“इति प्रधाचन्द्रविरक्तिनायं समन्वयवर्गिनिर्वाचितपाम्नाभयन-
टीकार्थप्रवक्तुः वरिच्छेदः ॥१॥”

[illegible][illegible]

मर जाये। ब्रह्मन् प्रसन्न होकरा नमस्कार कर आकर दंडा होय।। न्हा प्रसन्नपर-
यो ओ एकएक बहिरात्माका प्रत्ययक निज गवा, जो उनके मनकी जोके
निदे दो हुये परम्परी जोबको ऐतरेयन दिख न्हा वस्तु बहिरात्माके सक्-
कतिम ब्रह्मकी जोके निज जोडे सकेय उक बी न्हो किवा दवा गरी
मनुष्य सतह गवा कुल दत्त है।। आतापरतीके मायके दो द्वाय भरी परम्परा
मानके प्रसादकी रही है। जो पयनी गीता द्वारा मनुष्यको सदाभी सत्य-
मयका प्रवर्णित करे। जो ब्रह्मके सत्त्वोय सत्त्वोयकी सत्य परम्परा
को टीकोके प्रवर्णित गवा दत्त है। जो ब्रह्मके उदयसुरा एक मनुष्य
हय प्रकाश है।

“वधाहूनं च गवयः” बौधायनेऽप्युक्तं यत्तद्व्याख्यायित्वा श्रीकाश्या
 चतुर्थाद्वयस्य च वधादिभ्योऽङिनिष्पन्न इत्यादि शब्दाभावात् इत्यवश्यम्
 भूयता हि इत्येवमवश्यं वाच्यं प्राक्तनं कथं इति ।

—समवायिकाधीन १० वें १३ की हीम

[illegible][illegible][illegible]

[illegible][illegible]

● इमेकलान्कणायं जीरियनरित्तवन्नभावा?

सम्यं पश्येत्तुं भूयः प्रोक्तं भवेत् ॥१६॥

—अस्यार्थः

३. देशी घनेकान्तकी उस विष्णु की निरुल्लस प्रशस्ति प्रामाण्यवश एक और परिचयार्थ शक्ति का उल्लेख करने से (पुनः, दूसरे प्रकरण में से) ।

१. 'ए' शीर्षाफिस्यलवर्धनमुद्रा इषादिसर्गालयम् ।'

^{११}गुडाक्षी जीवतश्च वास्तव्यगुज्ज्वलसोऽप्यन्यथास्तीति. ॥^{१२}

यद्गुरुत्वात् कवि सर्वोऽभिव्यञ्जनपात्रम् ।

नै कवितायुक्तं नैमिषि ममान्मभट्ट-चोदितम् ।

इसके अन्वय यह होगा कि वह 'आयुक्त-कवि' है। यद्यप्यभट्टकी कविता अत्यन्त कलात्मक है, किन्तु इतिहासकार के लिये ऐसी कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है। अतः हमें यह कहना पड़ेगा कि यह कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है—

"यद्गुरुत्वात् कवि सर्वोऽभिव्यञ्जनपात्रम् ।"

इसके अन्वय यह होगा कि वह 'आयुक्त-कवि' है। यद्यप्यभट्टकी कविता अत्यन्त कलात्मक है, किन्तु इतिहासकार के लिये ऐसी कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है। अतः हमें यह कहना पड़ेगा कि यह कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है—

इसके अन्वय यह होगा कि वह 'आयुक्त-कवि' है। यद्यप्यभट्टकी कविता अत्यन्त कलात्मक है, किन्तु इतिहासकार के लिये ऐसी कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है। अतः हमें यह कहना पड़ेगा कि यह कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है—

इसके अन्वय यह होगा कि वह 'आयुक्त-कवि' है। यद्यप्यभट्टकी कविता अत्यन्त कलात्मक है, किन्तु इतिहासकार के लिये ऐसी कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है। अतः हमें यह कहना पड़ेगा कि यह कविता के अन्वय में कुछ भी कहना ठीक नहीं है—

वतिपरिवो यस्यापुष्टान्मताम्बुनिघेर्लवान्
स्वमतमतवस्तीर्था नरता पर समुपासत । १३५।

यह पद्य वति कुनिके बन्धनं ऐसे ही दिया हुआ तो हम यह बतोज्य
निकाम सकत थे कि यह बलन्धो पाषाणका ही वल है और उन्हेन धक्को
हूतिके सन्तः बन्धनम्बु ३ दस भवता है । परन्तु उन्हीने उमदी कृति को है और
राम को इससे पूर्व किम प्रकाश कलावच भी दिया है—

‘कुनिकुवः निगु दुवदमर्तितु आचार्यः कामसम्बद्धकर्मर्त प्रमातु-
नयनीसम्बद्धकृष्टाविद्विन्-अवादि कुनिकमर्तितु-अवादि-अवादि-अवादि-
नवदुर्लभकृष्ट—’

इसके दो भाग हैं १। आगे है, एक ही पद्य कि यह एक पाषाणको कावचवच
मही है । इसके पद्य कि वलन्धो-दो दस बतोज्य है । इस पद्यके पद्य कावचवच,
कय लमका है और कया अवादि-दो दस बतोज्य तथा प्रमातुवान् भी वचन है
परन्तु यह पद्य, कावचवच वलन्धो-दो दस बतोज्य पद्य है तो नहीं था कावचवच
तो निवारणीय है और अन्तः पद्य निवार दिया जाना है—

दो धर्मो १। अवादि-दो दस कावच दिया है, किन्तु ‘कावचवच’ कहे
हैं और ‘नी-अवादि-कावचवच’ कावचवच’ कावच पद्य वलन्धो-दो दस बतोज्य
किन्तु ‘कावचवच-अवादि’ तथा ‘अवादि-कावचवच’ भी कहते हैं । इन दोनों
प्रमाणों का प्रतीति ‘कावचवच’ दो वलन्धो वलन्धो-दो दस बतोज्य कावच
मही किया गया और न ६५०० ५३३ कावचवच को रद्द है । ‘कावचवच’ से तो
अद्वैत का प्रमाण भी मही है । ‘अवादि-कावचवच’ है और ‘नी-अवादि-कावचवच’ से
कावचवच का प्रमाण है—

‘अत्र दृष्टव्यमिमांशो कृतिनिर्गम्यत्ववचनमनुसंधेत ।’

यह पद्य दो दोसे कावच ‘नीमदकलन्धोका पुनर्निर्गम्यत्ववचन’ कावच
कावच ‘अवादि-कावचवच’ का कृतिनिर्गम्यत्ववच उद्घाटित है, और किन्तु निम्न वाक्यके
कावच, कृतिनिर्गम्यत्ववच कावच कृतिनिर्गम्यत्ववच पद्य दिया है—

‘उत्ति परापरपुष्पवचनगुणगुणमस्त्यवच मंगलम्व वसिष्ठवचं तु
वसिष्ठवचवचं निवेदयामः ॥’

मार्ग (विचार) की आवश्यकता ही होती है और इससे ही एक विद्वान् को बहुत धैर्य और शक्ति मिलेगी। यदि वह सब धर्मों की तुलना करे तो वह ही ही हो जायेगा और यदि वह सब धर्मों की तुलना करे तो वह ही ही हो जायेगा और यदि वह सब धर्मों की तुलना करे तो वह ही ही हो जायेगा।

ये धर्मशास्त्रकारों की ही बातें हैं। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है।

(१) यदि धर्मशास्त्रों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है।

तत्त्वज्ञान (धर्मशास्त्र) की तुलना करनी है।

धर्मशास्त्रों की तुलना करनी है।

यही धर्मशास्त्रों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है।

यह धर्मशास्त्रों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है। यदि हमें धर्मों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है।

† यदि धर्मशास्त्रों की तुलना करनी है तो हमें धर्मों की तुलना करनी है।

(२. सातवीं पांता । देवालय) की 'पुष्प' की टीका पर मनुष्य समान
मनुष्य विवशता-सातवीं पांता' रत्नवी एक टिप्पणी । अर्थात् है, 'रत्नवी' शब्द-
का प्रयोग वाक्य में प्रयोग है :-

‘इति + सञ्जु पुरा स्वकोव निवेदि विद्व-सर्वम-संपदा’ गणपर-
प्रत्येकवृत्त-वृत्तकेषुपि दशपूर्वाणां सूत्रप्रवर्तमानं महिमामात्म्यात्क-
र्तव्यमयम्’ इत्यमरातिपादैराचार्यशेखराभ्युत्तस्य तत्प्राधान्यादिगम्यस्य वा-
च्यताऽऽत्म्यं गंधमन्याभ्यं महाप्राप्तवृत्तान्त्यस्य महाप्राप्तवित्तप्रारुण्य-
श्रीमद्विज्ञानसंज्ञानयद्वाच्यमन्त्र विज्ञानं संज्ञानपुरस्सरमनव-विषय परमाप्त-
गुणानिहास-परीक्षागुणैक्यवत्त्वं दद्यामाया अभावात्प्र प्रवृत्तजननत्वं च सू-

[illegible]

१. यह प्रस्तावनाकाय पुनर्निर्माणकाय के द्वारा 'मार्गदर्शक' दस्तावेज़ है।
 २. उक्त दस्तावेज़ का निर्माण करने के लक्ष्य का निर्धारण मध्यम २००० है।

† 'अङ्गिरसमगारमर्षोऽष्टिं जाम्बवानारं निनन्वृतिम्व्यने । संसल वरम्वरः ।
मर्षोऽष्टिं संसलवसन्तं । याम्बावताम्वसन्तं । गच्छिन्तु । संसलवसन्तं । याम्बावताम्वसन्तं ।
इति ज्योतिष्मन् ।'†

कायस्य 'मि-सो-स' नाम्ने' ॥ अविद्याय है ॥ ३० विप्रश्नोत्तो विप्रं ह्य
ज्ञानके स्वरूपका प्रतिष्ठ स्तोके विप्रं प्रकार है-

साधुमागम्य जनार् सत्तारं कमधुश्रुताम् ।

ज्ञानार विप्रवत्त्वानां यन्त्रं वदुमुक्षिस्वभम् ॥

सातके इस गीताका प्रथम, चतुर्थीके ३०वाँ श्लोक-कथाका अन्त इसपर
आपराधीता नामका एक कवि लिखा है 'यैव' शब्द अन्तका ३०वाँ श्लोक है ।
इस श्लोक के अन्तर्गत अनेक श्लोक हैं । विप्रमागम्य 'साधु' शब्द वदुः ॥
उपरान्त वृत्ति ॥ ३० ॥ यैव है अन्तर्गत, 'दुः' अन्तर्गतान्तराः वदुः शब्द विप्रं है
श्रीराम हनुमन्तों का नाम लिखा है -

हृत्तुं अन्तर्गत का अन्तर्गत । अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः
अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः
अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः
अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः अन्तर्गतान्तराः

इस शब्द अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥

श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान्
श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान्
श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान्
श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान् श्रीमद्भगवान्

अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥

॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥
अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥ अन्तर्गत ३० ॥

परन्तु फलश्रुति के अन्तर्गत उदाहरणों के लक्षणों से ही यह स्पष्ट हो जाता है, जो कि 'समाधि' शब्द की प्रयोग कथा बता देती है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है।

अतः समाधि शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है।

इस प्रकार समाधि शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है।

इस प्रकार समाधि शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है। अतः यह स्पष्ट है कि 'समाधि' शब्द का अर्थ ही 'समाधि' है।

से दुष्प्रति प्रेक्षकें कारणतु मायवनी मित्रि करन— समस्तवदको व्यङ्ग्यनिके शारदा
विद्वान् कथाए दन—के तिले मर्त्य नही है

संसदे हेतुमै धामधोवासाको विषय सम्बन्धी नं० १८९ क उपलक्ष्य किण्वनमा छैन भन्ने प्रमाणहरू छन्—

सर्वदेतैव भाष्यस्य साधर्म्यादिति श्रव

न्यायानुप्रविष्टमप्यनिरास्य-७३५६। नय ।

[illegible]

* रेणो, व्यापप्रदेशा' आदि ध्वजोन रोन ३-४ ।

[illegible]

यस्मिन्नास्मिं पाठ्ये चोक्तं ननु— 'यस्य यो यो ज्ञातः सितं है वही एक पक्ष नही
रखीक ते और उसके बाद विभिन्न भाषा में देकर संक्षेपवत्ता प्रारम्भ किया
हवा है

“तद्विचित्राऽप्युपनिषद्भाषितमवतन्निरोधं जित्वात्तु कस्तथाविधाप
प्रत्यक्षवत्तन्मन्त्रप्रवृत्तमनोमन्त्रवत्ता ज्ञानावरा और पुनरितिहादि-
मन्त्रमन्त्र”

इसका अर्थ यह है— अन्तर्गत नवमानवप्रकार 'जित्वात्तु' अर्थात् जित्वात्तु
के अन्तर्गत नही एक नही व का पुनः है और विचित्रा रत्नाय विभिन्न प्रकार है
इत्यादि— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

“तद्विचित्रा” अर्थात् विभिन्न प्रकार है— 'तद्विचित्रा' अर्थात् विभिन्न प्रकार है—
मन्त्रमन्त्र

[illegible][illegible]

“सुप्रसन्न मनसा भवतु ।” ६-४-१३

[illegible]

(६) 'नैसर्गिकान्तराद्येव विज्ञिया अपादयते'।

डा.पुनीमोला, पृष्ठ ३-५

भा. ५, निचंगु विहारदा-ने अरक्यपुत्रअवगुणि ।

॥ सन्तभोगी न च लक्ष्मिस्तः ॥

गुग्गुलुः ५८८ र.

न गच्छता निन्दन्मृत्युर्वा- न ५ । कृताद्याः कृत्यं पुनश्च

— कदाचुत्तमोऽयं २४

+२४ ५.१६ ३ अ-व-५.४९.०७८५ नगरपालिका कार्यालय-

विष्णुः महादेव ।

—सर्वविधि ४८ ५ सू० ११

८४३ १५६५ + १६-७-३९ १२ १५६५ मिठे सुमनः ३३५ ॥ श्रीरामायण-

१॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

[illegible]

संस्कृत-भाषायां शब्दार्थः ।

(३) यद्यः कृता मृगं न दृश्यते तदा मृगं न भवति ।

— १५८ —

‘द्विपक्ष) आर्त्तगणना स विर’ल्य प्रमद्विनिदि।

॥ १ ॥

ਅੰਕ ੧੦੦ ੧੦੦ ੧੦੦

[illegible]

प्राचिनं ब्राह्मणं, नमः तस्य । वाङ्मयं, नमः तस्य । वाङ्मयं, नमः तस्य ।

ଆମେ, ଆମ ଶାସ୍ତ୍ରାଧିକାରୀଙ୍କ ସହିତ ଏହି ପ୍ରକାରର ପ୍ରଶ୍ନର ଉତ୍ତର ଦେଉଛୁ ।"

—सुत्रांतरेणैव, अ० १ श्रु० १२

पदां भर्त्तिनं सोऽभर्त्तिनः ॥ ७८॥ ॥ ७८॥ इति सूत्रं समन्तभर्त्तिनी

[illegible]

मार्गों और प्रथाओं का केन्द्रित आलोचनात्मक विश्लेषण करने वाले हैं।

10/25/2012 11:29 AM

और लम्बा किन्ता अधिक लम्ब है यह हम मुनगा (या) सांको के मुनगाघोरे प्रकट है। वहाँ 'प्रतिपक्ष' विराम उपायक है और 'वर्त' में 'प्रत्यक्ष' की विलि है।

(११) 'वच' बन्धन्यमादेर्वाङ्गाणाम् परस्मैपदे ।

आन्वयान्वयान् सामासि निरुपासने निरुपा ।

—रत्नकर ७७७८

'वच' केनभाज्यस्यसन्ध्यात्तद्वदप्यस्वरकण्ठे इत्येवादिनि कृतम्
चिन्तामयप्रकाशम् ।

—सर्वाधिकार ७७७८

यह 'वच' एवादिनि कृता चिन्ताम् यह 'वच' एवादिनि कृतम् है।
'वच' के 'वच' प्रकाश' लक्ष 'वच' प्रकाश' लक्ष 'वच' प्रकाश' लक्ष
कुल प्रकाश' लक्ष 'वच' प्रकाश' लक्ष 'वच' प्रकाश' लक्ष
और 'वच' प्रकाश' लक्ष 'वच' प्रकाश' लक्ष 'वच' प्रकाश' लक्ष

(१२) 'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।

सर्वे आन्वयान्वयान् सामासि निरुपासने निरुपा ।

—रत्नकर ७७७८

'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
वच' निरुपासने परस्मैपदे ।

—सर्वाधिकार ७७७८

यह 'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।

(१३) 'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।

सर्वे आन्वयान्वयान् सामासि निरुपासने निरुपा ।

—रत्नकर ७७७८

'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।

—सर्वाधिकार ७७७८

यह 'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।
'वच' निरुपासने परस्मैपदे ।

यह नाम सर्वत्र जल पड़ता है। 'अत' और 'अनक' दोनों एकवच है अतः 'विनस्तुतिरनक' का निदस्तुतिप्रत्यय भी पड़ा जाता है। 'विनस्तुतिप्रत्यय' यह बादको लक्षितप्रत्यय 'विनस्तुत्य' होना है और यह प्रत्यय उसीरा तब है जिसे लौकाचार्य 'विनस्तुत्यप्रत्यय' इस वाक्यके द्वारा आश्रय्य ही व्यक्त किया है। साथ ही, 'स्तुतिप्रत्यय' नामक भी उल्लेख किया है। यह वाक्य चण्डालोंकी प्रधानताको सिद्ध हुए है और वस्तुतः एतेक अन्वयप्रत्ययों हों 'विनस्तुतिप्रत्यय' वाक्य 'विनस्तुत्यप्रत्यय' जैसे नामने ही उल्लेखित किया गया है, यही १५वें अध्यायके आदि नाम प्रत्ययों वाक्यप्रत्ययों की सूचकत्व है।

ଛାନ୍ଦ-ବିଷୟ—

[illegible]

॥ अंश १० ८३, ८८, ९२ । † अंश १०, १६, २८ ।

‡ वसोक्त द३, द७ । + सुसोक्त द३, द३, द४ ।

●देशो, सांख ३, १५, २५, ५८, ११-१२, १६-१७, ६७-७८, ४५-४७.

०६-५७, ६३-६४, १०१-१०३ ।

अनेक पक्ष सम्मिलित होते हैं जो एकलौटे धार्मिक अनुकूलता का तात्पर्य प्रत्यक्ष रूप से, किन्तु एक नए युग का वातावरण है, जो वास्तव में धार्मिक विचारधारा के अन्तर्गत है। यह भी धर्म के अन्तर्गत विचारधारा के अन्तर्गत पड़ा जाता है।

किन्तु ही अब इन्कम एंजे हे ओ दोनो पक्षोंके बने हैं-ओ स्वयंन्यास-ऐ-
हे ही जिनका तादा शरीर निमित्त कृपा है । १४ वा श्लोक ऐका है जिसका
अर्थके वाद निम्न प्रकारके एक-एक क्लेशों बना है शरीर के अक्षय है क्लेश
ह, न, म, त, तात्त्व ही "स्वोन्मिता नु क्लीन" शब्दका १८ वां श्लोक ऐका
ही है जिसका अर्थ लोकोत्था निर्वाण एक ही प्रकार प्रकट हो रहा है ।

[illegible]

ग्रन्थ रचनाका उद्देश्य—

इस कृष्णकी रचनाका दर्शक, बुद्धके प्रथम पक्षमें "आगसां जडे" नामके
द्वारा आर्षोंको कोणा जलमाया है और दूसरे पक्षमें ही विन्दुस्थितिमें

५. देखो। पक्ष सं० ११८, ११३, ११४, ११५, ११६ ।

♦ इससे, बीररोवागन्दिरसे प्रकाशितपत्र पृष्ठ नं० १८३, १८४ का फूटनोट

† दोनों, स्रज नं० ५१, २२, ५५, ८५, ६३, ६४, ६५, ६८, ७६ ।

अन्तः स्वस्वभूतानामे, परमात्मनाम्—परम बीजराज-सर्वत्र-जिन्देगारी—स्तुतिपत्रो
कृष्ण-परिणामोन्मि हेतु मत्ताकर उधके द्वारा कृत्वाहामानेको कृष्ण और
स्वर्धन वस्तुता है १ । तब ही यह भी वननाम है कि पुष्प-पुष्पान्य स्मरण
कृत्यते वाग्यमको दूर करके उसे पवित्र बनाया है २ । और स्तुतिविष्णु
(१११) के 'जिन्देगारी एवं' केवको अपने 'जिन्देगारी' तथा 'पुष्प' होने कादिपत
कारण सिद्ध किया है ।

मस्तु स्तुति कोणी स्तुति, नौता रहनी धमका कडिका वाग्यम-क-म ही
कर म-पी अति होनी कादिपे—स्तुतिकर्ता स्तुत्यके गुणोंको धनुस्ति करण
हूता उधके कदुरादी होकर नदरन होने अपना उन वाग्यम युवा को वाग्यम
पितृवत वरनेको मुद्र-भाषणको माफने होना कादिपे, मदी स्तुतिपत्र टीक
वहोप एक म- (वाग्यको गोपना) धरित हो मफन है और यह वाग्यमकी
मस्तुति म-माग्यमकी (१११) वाग्यममाफन मकारमको म-माग्यमकी
काल-म-माफन वाग्यमके दूरी किरातामे म-माफन को मफनी है ।

और दुर्भाग्यके वस्तुमकी वस्तुमकी वाग्यम-माफी वादे वस्तुमकी वदे
प्रमाण करना और उसकी उध प्रमाणता-द्वारा धरने वाग्यमकी वस्तुम-
माफी-माग्यम-माफी को उधके भी वदी मफनी नही है । वाग्यमकी वस्तुमकी
माफी वह पवित्र भी नही हो मफना; क्योंकि वाग्यमकी वस्तुमकी
वह वरी ही वाग्यमकी वाग्यमकी है, उधके वाग्यमकी को वद भी कि-
माफन नही है, और इसलिये किरीको वस्तुमकी वस्तुमकी वस्तुमकी वस्तुमकी
प्रमाणताको कोई मकार नही होके और न वह मफनी स्तुति-पुष्प मकारमकी
पुष्पकारमे कुछ वेग-मिमाफन ही है । इसी ताह वाग्यमकी वस्तुमकी वस्तुमकी

† “स्तुति स्तोत्रे तावोः पुष्पपरिणामाच्च न उध

मलेत्ता वा स्तुत्यः फलवति तदन्तर्गत न सति ।

किपेन ह्याधीनाम्बवति मुमये भव्यवपे

स्तुत्यस्तुत्या विज्ञान्ततपविपुर्न नपिबिन्द ॥११६॥”

‡ “तथापि ते पुष्पकृत्स्तुतिभिः कुराति पितं कुरातिःकुरातेन ॥११७॥”

[illegible]

सुदृक्त्वमिदं श्रीगुरुभक्त्याप्यभ्युदयं द्विदृश्यमिदं भक्त्याप्यभ्युदयं

अद्यानुदात्तोन्नेतमन्तरादि प्रथो ' वरं चित्रादिद् नवदितम् ६५।

[illegible][illegible][illegible]

मन-वचन-कावचन योगकी स्तुति के प्रति एकाग्र करवना कदा। अतः ॥८॥
 दुर्गा योग-साधनात्मक कलाके द्वारा स्तुतिमें विषय प्रकटसे खाने रम्यसे
 मण्डिरमये—योगी दुर्गे सात्व-धनीको प्रकटित और प्रवर्जित किया
 जाता है ।

मन्त्रगुप्त पुराणन चर्याचरिणं पद्म-पूर्वाधिके पाठे गृहस्थियोगे दक्षस्य और
 कावचके श्री-श्री व्यासाराणे उत्तरकेन स्तुतय (= स्तव्य) के प्रति एकाग्र करनेको
 'ब्रह्मसूत्र' और धनको माना-विद्वन्मनसि जगत्ताको दूर करके उसे ज्ञान
 तथा सुसुखसाधनके द्वारा स्तुतिमें लीन करनेको 'मातृपूजा' बतलाया है
 आचार्यजी हृषीकेशचरणों के बिंदु आचरण संघटितमाने आचार्यमें कथन
 कावचकावच (विद १३५) अन्तर्गत) के निम्न पाठधर्म प्रकट किया है -

॥ सत्पाविमह-संकाशो ब्रह्मपूजा निमायते ।

तस्य मनसि संकल्पो जायते ॥

स्तुति-साधनके अर्थ में लिखा है उस अर्थ में इसका पूजा-पाठ है,
 ऐसा उपासना-साधनके सम्बन्धमें है ज्ञान है। साधनिक पूजा-पाठ की
 चरित्रके फल भी इसी प्रकार है उस समयके ज्ञान ही है। इस समय में
 ज्ञान अकार-रूप-मनसि है अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 ही प्रतिपादन के साथ विचार-लेख ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 पूजा-धनार्थक स्तुति के द्वारा ही ज्ञान ही है अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 और ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥

वीरभगवत्से शार्ङ्गना शर्मा ?

स्तुतिविद्या। अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 ज्ञान है और वह कि जब हीनता में अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥
 अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥ अतः ॥८॥

प्रानीय प्रविष्टियों को ही नहीं आदि, वही दोनों नृत्तियों का यह सात
विषय कहें हो सकेगा ।

यह टीका कवि साधारण भाव फलके अर्थको लक्ष्य है—किरी
विषयके विषय स्वाभाविकता के लिये विवेक नहीं है—किरी यो सुख फलके
प्रवेश करनेके इच्छा को एक विचारियोंके लिये बने ही काम को जोड़ है । इसके
सहारे स्वयं-पदोंके सामान्यताके एक बनि होकर उनके भीतर (साधारणता)
सन्निहित विचारोंके सामान्यताके प्रकृति हो सकती है और यह प्रमाण करनेपर
काम तथा प्रमाणन साक्षात् हो सकता है । अन्यथा होना-सर्व भी उतना हो
नहीं है किन्तु कि नृत्तिये विना हुआ है, अर्थात् नहीं कहें प्रकृत फलके हो
होना प्रकृत है । अर्थात् समुदायके साहित्यकारोंके व्यवसायिकोंके उन दिग्दर्शनों
फलात् बला है किन्तु प्रकृत में ५१ और ८० के सम्बन्धमें विचार है ही
सकना है कि इन प्रकार कवि नरामर्शोंके कोई सुदृष्ट रीति नहीं हो और
सन्निहितता-प्रदीप के लक्ष्यके अन्तर्गत-विचारोंके सम्बन्ध, ५१ के लक्ष्यके प्रमाण करने
हुए उनमें विषयके अन्तर्गत-प्रमाण करनेवाले विचार हीन प्रकृति का लक्ष्य विचार है के
सकल टीकाके ही लक्ष्य है । यदि ऐसा हो तो इन टीकाके प्रमाणके लक्ष्यका
महत्त्व-प्रमाण लक्ष्यका लक्ष्य है ।



— ३३ — अन्तर्गत-विचारोंके लक्ष्य प्रमाण करने लक्ष्यमें नहीं है । देखीये लक्ष्यके
पर यो उक्तको कोई भी नहीं मिल नहीं देखीये इन विषयका कोई विवेक
विचारके लक्ष्य प्रमाण नहीं किया जा सका ।

समुद्र-कुम्भ-सम-सागर ३२, विष्णु-दोष-अक्ष-कर्मसु ३३, गणकोश-
मातृ-व्यास-समुद्र-माता, ३३, ३४ ।

(६) सविधि ६२, जगदीश्वरगणानिन्दन, ६३ ।

(१०) कदम्ब (१८१) ४६, नक्षत्रिचक्रमलम्ब ४६, शिवयो ४६, उत्तर-
म्बोधि, विष्णु, मोतवा ५० ।

(११) धेयाय, शम्भुवक्त्र ११, ईश्वरविग्रहनिर्माण, ५२, ५३ ।

(१२) विष्णुवक्त्र-विष्णु-विष्णु-विष्णु, विष्णु-विष्णु, ५३, ५४ । (५५) ५६
वीरराज, विष्णु-विष्णु ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(१३) विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६ ।

(१४) उत्तरवक्त्र ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(१५) कदम्ब-विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।
विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।
विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(१६) कदम्ब-विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।
विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(१७) कदम्ब-विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।
विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(१८) कदम्ब-विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।
विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(१९) कदम्ब-विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।
विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

(२०) कदम्ब-विष्णु-विष्णु, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ ।

वर्तिकाका संसार होना है। इनो वास्तवों और वस्तुओं परतीर्थ विस्मयकारक-
होता स्पष्ट दिखा दिया है—

स्तुति स्तोत्र साधो कृशमधिरसमाय न तदा
अकामा यो भुङ्क्ते, यत्तदपि तत्तत्प्रभं न सतः ।
किमयं स्वाधीनाजगति मुन्धे भावसमये
भुङ्क्ते न त्वा विद्वन्मदमधिभूत्वं नमिजिबय ॥१२६॥

इसमें क्याकरा है कि—'स्तुति स्तोत्र' और 'अकामा' इत्यादि का बोझ
होना न हो और 'अजगति' आदि को भोग में भी (Dared) उनके जगत् हीनो
होना न हो हीनो हीन वस्तु सामान्यतया तो तत्त्वज्ञानार्थ—विचरने मात्र
कांतव्य रूपसे स्वीकृत करनेवालों—जिनके बुद्धिमानों पराधीन—कृशमधिरस
यत्तदपि तत्तत्प्रभं न सतः—कृशमधिरस—हीनो है, जो न भोग कृतान-
वर्तमान कृतान्तर में बुद्धिमान भाव समझता होता है। जब समयसे एक
समय कृतान्तरमें नव करने सुख है—कृतान्तर ही नव करने कांतव्य होना
होता है—नव करने कांतव्य नमिजिबय ॥ १२६॥ स्तोत्र—स्तुति—
कृतान्तर। कृतान्तर कृतान्तर—हीनो का साधो स्तुति न कर ? कहे ही नये

अनेक कृतान्तर कृतान्तर—हीनो कृतान्तर की स्तुति न करे हीनो कृतान्तर कृतान्तर
कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर (१२), कृतान्तर (१२) तथा कृतान्तर (१२) के कृतान्तर
कृतान्तर कृतान्तर, है कृतान्तर, कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर
कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर
हीनो स्तुति कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर

स्तुति स्तोत्र साधो कृशमधिरसमाय न तदा
अकामा यो भुङ्क्ते, यत्तदपि तत्तत्प्रभं न सतः ।
किमयं स्वाधीनाजगति मुन्धे भावसमये
भुङ्क्ते न त्वा विद्वन्मदमधिभूत्वं नमिजिबय ॥१२६॥

'(नमः)' का भाव होता है, मैं हीनो—आपके ने कृतान्तर हीनो कृतान्तर
हीनो कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर
स्तुति स्तोत्र—हीनो कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर
(नमः) का भाव होता है, मैं हीनो—आपके ने कृतान्तर हीनो कृतान्तर
हीनो कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर
स्तुति स्तोत्र—हीनो कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर
(नमः) का भाव होता है, मैं हीनो—आपके ने कृतान्तर हीनो कृतान्तर
हीनो कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर कृतान्तर

बसोष बाहसकको न जानते ओं न कवन करदे हूँ नी मेरा वह सीटना
 प्रताप बागके कुण्डोंके माथमेंसह हूँनि कन्धपर हो हूँ मैं ।'

इससे "वेनेजुएला" हीमेंबर कहनाया बहुत। कानन में स्थित बहुत
रसता है वरु श्रुत जाया जाया है ।

[illegible]

अष्टादशे वसन्तर्षभे रावसाय तत्र प्रजेषु प्रतिमं । आर्यः

एतद्विषये नान्ये १९६०-६१:२२ स्थितिः अस्ति अथवा न ॥५॥

[illegible]

अथ पञ्चाङ्गान्तरा विनिर्वातं शान्तिं शान्तिविधायां सारम् शान्तिनाम् ।

भूयद्भूतैः कलदा भवोऽन्तर्यामिं शास्त्रिणो मे अगवन् शतवत् ॥

इसमें जनमानसों में है कि वे अमान्य मानिजिन् वर उरुव हैं। वे उनकी मारण नेत = विप्लव सन्तों को मारने। अमान्य मोद मरुत सन्तुष्ट-काम-मै-भाति-वर्ष-प्राप्ति शान्ति करके भयानक परमवर्षिन् मानिन् की है। पूर्य मुन्यवर्षिन् मन्त्राङ्गिन् विन्त शान्ति की है। बीम "स्वर्ग" वा अन्त्यवर्षिन् मन्त्राङ्गिन् विन्त शान्ति करके शान्ति

[illegible][illegible][illegible]

द्वन्द्व-सुखी-रम्य-लक्ष्मी-समादि-वरगं च योगित्यमा च ।

४४३३ विप्रगच्छं १ ह्य विप्रवर परह-मरलेभ ॥

[illegible]

नहीं होता कि कोण जैन ब्राह्मण आदिनां प्रयोगों द्वारा अपनी एकता की
 यह प्रवृत्ति का प्रथम चाल तब बाद उत्पन्न होई तब का ही प्रथम
 दृष्टान्त प्रस्तावित है २१६ अथ हैवे एका ध्याय प्रस्तावित का प्रस्ताव
 आदिनां जैन के द्वारा प्रयोग प्रस्तावित अन्तर्गत है। अस्तु आदिनां
 विद्वान् १०५ उक्तानां प्रयोगानां १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ आदिनां
 प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

२५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

१. अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

२. अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

३. अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

४. अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

५. अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५
 अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५ अथ का प्रयोग १०५

[illegible][illegible]

(७) जो प्रजापति पत्नीदेवता - यादव कर्षक धानरसामुद्रिपत - वेदवेद -
 रसिपति हुंते हैं वे अनपजनीके वृद्धसे हैं जन्म १८. कलशुभा अज्ञानवि नदी
 तथा उनके वादमोभुत साधनद्वारा विद्वान्-यादविक विदे की प्रजापति
 निहितवृत्त हुंते हैं प्रिय प्रजा। कि कर्षकके यन्त्रवृत्तके जैसे वृत्त (८) [वृत्त
 ज्ञान प्रविष्टोपनि गृह्यक वृत्त है]। तथा धीः सदा सदापिन्ते प्रकाश
 नमस्कृत कुलदेव जमी प्रसार विषय प्रकाश करते हैं प्रिय प्रजापति कि वादवे
 संतप्त हय वृत्ती ओतन संसारवृत्त प्रेक्ष करके अपना सब ध्यान गिरा डालने

जिस प्रकार सन्निवृत्त आदि रूपमें वस्तु प्रमाण-प्रतिपन्न है उसको—अपेक्षामें रखना चाहिये । यह शब्द एकान्तवादियोंके त्यागमें नहीं है । एकात्मताही अपने वैरी आप है (१०२) ।

महाद्वन्द्वय आर्त-मग्नमें सम्यक् एकान्त ही नहीं किन्तु अनेकान्त भी प्रमाण और तत्र-साधनों (दृष्टियों) का लिये हुए धर्मकालपरस्पर है, प्रमाणकी दृष्टिमें अनेकान्तपर और विवर्धित नयकी दृष्टिमें अनेकान्तमें एकान्तरूप—प्रतिनियत-अभङ्ग—सिद्ध होता है (१०३) ।

(१६) अर्द्धप्रतिपत्तिन धर्मनीच सभार-मयुद्धमें प्रवर्धित प्रमाणोंके लिये परम उत्तरनता प्रधान मार्ग है (१०६) : सुखध्वज-तन्त्र परममार्गोक्त । परमपरा-मेघमे अन्तर्धाने) अनन्त-दुरिदम्भ करो-करो अन्तःकरणके लिए समर्थ है (१०७)

(१०) घर सोर र घर जगत प्रदेन हाथमें धीमा उपाद और स्वय-लक्षणकी लिए हुए है । यह अपने विवेककी सर्वप्रतापता विज्ञ है (११४) । पाठा पदमनता कमजुर्वा (विद्वत्ता जीव) को अन्तर्द्विष्ट स्वयंकी आकाङ्क्षा-दिव कर रक्खा है । पशुधर्म योगवर्धन—परमदृष्ट्यवधारणिके लक्षणमें—परम श्रिया जाता है और ऐसा करके ही पश्य साक्षात्कार—संसारमें तप ए जनेदानी प्रवर्धित और सुखकी—प्राप्त किया जाता है (११५) ।

(११) पशु के भागी स्वयं स्वयं परित्यागकी कारण होती है और उसके द्वारा श्रेयोभाग सुख प्राप्त होता है (११६) । परमानन्द-स्वरूप यथवा सुखपरस्पररूपमें विनयकी एकता अन्तर्गत जन्म निवृत्ति सम्पन्न रूप किया जाता है (११७)

वस्तु-न्य ननु तर्कोंकी विवेकाके लक्षण विधेय, प्रमिषेय, उभय, पशुधर्म तथा पित्रधर्म विधेयानुभय प्रतिपद्यनुभय और उभयानुभय—रूप है उसके अपमानित केशों (धर्म) मक्ष प्रत्येक विनय सदा एक दूगरीकी अपेक्षाकी लिए रहता है और असमझके नियमको अपना विनय किये रहता है (११८) । अर्थात् परमव्रत है । जिस आत्मविधिमें श्रममाण भी आरम्भ न हो वहीं धर्म साक्षी पूर्णप्रतिष्ठा होती है—अन्त्य नहीं । यहिहा परमव्रतकी सिद्धिके लिए उभय प्रकारके परिग्रहका त्याग आवश्यक है । जो स्वभाविक धर्मका छोड़ कर विकृतवैरा तथा उपधिमें रत होते हैं उनसे परिग्रहका वह त्याग नहीं बगता

समन्तभद्रका युक्त्यनुशासन

ग्रन्थ नाम —

इस ग्रन्थका मुद्रिताई नाम 'युक्त्यनुशासन' है। यद्यपि ग्रन्थके आदि तथा अन्तके पद्योंके इस नामका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें स्मृततया वीर-सैनिकों को बचाने का नाम छोड़ करके परिचयात्मिका इत्येत्येति है। और इसमें सम्भवतः मूल ग्रन्थका प्रथम भाग 'संश्लिष्टशोध' अथवा अर्थ है—किर भी सम्बन्धी उद्देश्यवत् प्रतिशोध तथा शत्रु-संहार (रोष) अर्थवत् 'युक्त्यनुशासन' नामके ही सम्भवतः आद्य उद्देश्य विस्तृत है। दीपिकापर भी 'संश्लिष्टशोध' नामके ही अर्थ ही दीक्षाई अन्तर्गत, अन्तर्गत ही। अन्तर्गत ही इसमें सम्बन्धीक। 'युक्त्यनुशासन' नामका अन्तर्गत उद्देश्य किता है, यथा कि इस पद्योंके अन्तर्गत अन्तर्गत है —

'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' (१)

'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' विस्तृतः (२)

'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' परीक्षितः

साक्षात्कृतमित्यनुशासनम्' (३)

युक्त्यनुशासनम्' विस्तृतः' (४)

† 'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' (१);

'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' (२);

'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' (३);

'वीरसंश्लिष्टशोधमनुशासनम्' (४);

इसी तरह दूसरी कारिकाओंका भी ज्ञान है। वे कहते हैं। या कि कारिका-
 संग्रहमें कवित्त लभवाने कवयूत्योंको एक नुस्खे धारणसे प्रथम मन्दरशोक लाव
 कनकस्य दी प्रतीति, परन्तु उसके मन्दर करने साम्य युक्त स्वयं व्यवस्था अही
 बिन्दु कहा और दूसरे एक निम्न भूतों को उनके सिद्धे निवेदन बिदा कहा तो
 अपने मतपर कोई उत्तर प्राप्त नहीं हो सका। और इसविद् वह नुस्खे फिर
 जिन्हें दूसरे मन्दरशोक व्यवहार ही हो जा सकेंगी।

आज्ञा है अन्यत्र इस कवित्त संग्रहमें १२२ दोहों विषयमयों परसे वाचक
 १५६ और १५७ उत्तरों द्वारा उत्तरों को समझ कर सम्बन्ध होने उसके व्यवहार
 और ज्ञानमें प्रवृत्त होने।



इन कथनों के कुछ नाम तो खाने खाये, लम्पटानेक है और कुछ एक दूध के से भिन्न है, जो वसुधै कुरु कुरु तुभ्यः मित्राणि ते कि परमात्म्या उपासीत करमेताये नाम तो बहुत है। कःकहागने जानो-बचने धिक् तथा धीरशक्तताके अनुसार उन्हें कान-धनने कादमें बचःसमान बंदन किया है। लम्पटाने-बचने टोकाकार वाचनमें कदाकदा 'निराश्रयता नाशवानां शोकसमाह' ७५ अश्रिताना-सावरके हाता कई मुक्ति को दिया है कि इन कई शोकमें परमात्माके बापटी का कितना आनंदमाना निरखें है। रत्नकरचन्द्रकी टोकामें जो वदःकहापावने 'कातस्व नाशिकी मायनाया प्रकाशना' ७६ इन उरतकता-मायनके द्वारा यह दूसरा भी है कि उसे जलवे जानरी मायनायका निम्न है। एतन्नु उक्तों के मायमें मायता एक विरोध 'प्रकाशोपनिषद्वाच्य' को दिया है, जिसका कारण पूर्वमें जलप्रदीपको दृष्टि के बादके परमात्मन के चका छोटा कहा था। वरना है जलका यह मायना। एकपाय 'रत्नकरचन्द्रागत' की नहीं कही जा सकती। क्योंकि इनमें 'नानाशक्ति' और 'सर्वज्ञ' जैसे नाम नहीं आते। 'न.वे.' और 'कातस्व' जैसे नाम मायने (परमात्मनेवरेतक) कालके लक्ष मायन की लक्षण है। कारणमें यह आने के पीछे शिरोधार्य की लक्षमें रक्षक की दक्षिण की नहीं है, और वृत्तिमें उसे जलदी स्थिति में पचने बदलने और वेद जानने की उपरि समझने की कोटि की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में उसे पच-का लक्षण है जो जल है और जो मायनामें वह जलकर हुए मायनका होता कि इन मायनामायने वृत्ति का तो ही कालोंमें जल मायन पड़ता है। जो बिंदी काव्यदिक सबका रक्षक-संरक्षण ही परिणाम कहें जो संख्या है।

इन तरह उन्हें उनके मायनमें सब ० वा पक्ष लक्षण नहीं रहता यह /की इस कारणों ही की नहीं कलता, वरोंके यह उसे पचने प्रभु हुए विचार, और 'मायता' जैसे विषय-परोंके विरोधों के कारणें मायनामयमें है।

इनके सिवाय, उपास करने पर भी रत्नकरचन्द्रकी ऐसी कोई शान्ति प्रतिष्ठा कुछ जमी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है, जो प्रकाशमें टोकामें पहलेकी जलवा निम्नकी ११ की अश्रितानेकी या जलवे को पहलेकी निमी हुई हैं। अनेकवार कोटिपुके शान्तिमायनामायनाको रत्नकरचन्द्रके निम्ने दा० ६० एव

दरारके सिद्ध ही उत्तर कहा जा सकता है क्योंकि प्रकृतधर्मके शोध-प्रकार-
को देखकर जब विनोदोद्दिष्टता, उसका मार्ग भिन्नान धीरे धीरेके बहुतसे कम
जीनयमें ही स्थित होलावे उस योगस्थले मन्नामदको स्थापित तो योग को वह गई
होगी और ये धर्म ही उत्तर वादिताः वदन्तने लगे होंगे, इन्हे हर कोई समझ
सकता है क्योंकि वह योगचक्रपर लब्धवर्द्धके साथ सम्बद्ध था कि उनके
गोप्य-गोप्यमाने केने के लिये । हेला में वही कि सम्बुद्धात्मानस्यैके के-
दान ही 'योगी' कहे जाते हों अनन्तरयोगी मुनिमाने योगी न कहा जाना हो ।
अब एका हीला तो रत्नकररत्नके कर्ताको जो 'मार्गान्त' विज्ञानसे उपलब्धित न
किया जाता । कारणवसे 'योगी' एक सामान्य शब्द है जो कृति, मुनि, क्षति,
लक्षणो वाचिका मानक है अर्थात् कि सम्बुद्ध-मानवानके विष्णु वाचिक
प्रकट है—

अद्विर्विदुर्निर्मितुम्हावसः संपदो जनी ।

सपदो सपदो योगी यद्वो मायुष्य फालु कः ॥८॥

ईशानादि-यमें योगीकी विशेषता वनि, मुनि-पदमी जैसे कर्मोंका प्रयोग करिक
पाया जाता है जो उसके पदोंके मान है । रत्नकररत्नमें भी वनि, मुनि और
सपदो शब्द योगीके लिये व्यवहृत हुए हैं । सपदोको वास्तव में समझने पर
मध्यमार्गका अन्तिमपद पदार्थ समझने हुए उसका दो स्वभाव एक पद के हैं
रत्ना में वह वास्तवमें ही स्थित होने योग्य है । उसके निष्ठा है कि—'जो ईशान-
विषयो तथा सम्बुद्धके कर्मभूत नहीं है वास्तव्य तथा वाचिकोव रत्नान्ते ही और
अन्य प्रकारके सम्बुद्धकोव लौकिक रत्नान्ते ही वह सपदो अर्थवर्तीय है । एक
सपदोके फल योगीके और कोई जीव नहीं होते । एक सम्बुद्ध (सम्बुद्धि-
विष्ठा बुद्धिक) 'कर्मोपलब्धि' की तरह अविद्यामयी प्रतीत होता निष्ठा है ।
विशेषतः बुद्धिक अविद्याय एक अन्य विषयकर जीव योगीके हैं जो पद-पद

॥ विष्णु-संज्ञा-काम्यनीति विराट्कर्मोन्निर्वाहः ।

प्रत्य-सम्प-पदोऽस्तस्यैव य प्रमाणम् ॥९॥

↑ सामर्थ्यके कारणसे, अविद्या नैव अन्तिमप्रमाणम् ।

वेदोपलब्धि-विष्ठा कहे लक्ष्य वादिता अविद्याय ॥१०॥

हम: रत्नकण्ठशब्देन तत्त्वार्थमुपपन्न मिथी दर्शनों रत्नकांठांश शब्देन
 किया है। तत्त्वार्थमिथी शब्दी नवव्यास: और शब्दों बंधन रहनमुकून शब्दविकृत
 शब्द विद्युत्प्रकाश शब्दार्थमिथी शब्द: पुनरी दर्शकित है। यह विद्युत्प्रकाश-
 शब्द और विद्युत्प्रकाश शब्दार्थमिथी शब्द: पुनरी दर्शकित है। यह विद्युत्प्रकाश-
 शब्द आशयों है। रत्नक 'प्रकाश' शब्द शब्दार्थमिथी शब्द: पुनरी दर्शकित है। यह विद्युत्प्रकाश-
 शब्द आशयों है। रत्नक 'प्रकाश' शब्द शब्दार्थमिथी शब्द: पुनरी दर्शकित है। यह विद्युत्प्रकाश-
 शब्द आशयों है। रत्नक 'प्रकाश' शब्द शब्दार्थमिथी शब्द: पुनरी दर्शकित है। यह विद्युत्प्रकाश-

यहाँ ३० माह-माह का शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द शब्द

॥ अनेकाल शब्द ॥ शब्द ॥ १-५ ॥ १-५ ॥

॥ अनेकाल शब्द ॥ शब्द ॥ १-५ ॥ १-५ ॥

इसमें प्रयोग-उक्त अर्थ पड़ता है, जिसके द्वारा ४४ धीरों का और
जिसमें १४० जय १८५६ में 'पराजय' का अर्थ ६४ भी मिला है ।

[illegible][illegible]

टीका-टिप्पणके अंश—

(७) "भयमिहदुग्धा कवा—अप्यौ कृतावता अप्यौ वयसाचारा-
वत्तय। द्वावश वयः पञ्च समिधयस्तिस्रो गुणयवजान् संस्कृतीकायः"

* યજ્ઞસ્થાં વદિ શ્રોત્રદેનતુષ્ઠો યય્વે જ્ઞાતુર્નમઃ.

श्रीपद्मकले-भो शक्तिपतेर्नमो पूज्यं वदस्व ।

गुणसंबन्धं स्वयमपेक्षितवान् एवम् आचार्यः ॥३॥ वृत्तं

३५ श्रीगुरुदेवप्रसाद ॥ १०८॥

श्रीविष्णवे नमः सर्वदा सर्वत्र सर्वान् भक्तान् प्रसन्नयति ।

प्राकृतटीकाखं तु अप्पारिभित्तिसुसुगुणा कथारवत्थाद्वचनपटो इति
वट्टिणान् । कवि या दश आनोपनसुगुणा दश अवान्त्तसुगुणा दशस्थानि
अन्थाः पञ्चजीतसुगुणस्येति वट्टिणान् ।" — जयवर्धनाचार्यभाट्टकथा ०२०

(२) "किमिराजकवज्जस्य (गा० ५६३) कुम्भिपुण्डरीकपत्रतुम्भिरु
कंकावः कुमिराजकवज्जस्येत्यस्य संस्कृतटीकायां व्याकृतानं टिप्पणकं तु
कुमिराजकवज्जसाद्वारिजिनननुनिष्ठादिनकं वसभ्येति (१) । प्राकृतटीकायां पुन-
रित्युक्तं वसवपथे वसं गच्छेत्त्यविषये संस्कृतज्ञा अजीश्वरिभान्तरमधि
शुद्धिः या संस्कृतं स्थापयति । नतस्तेन कुमिराज कतिपयदिवसपरम-
मिवककुम्भिकेलाग्रीकुट्टे वसतिश्च कंकाव इत्यस्ति । सोऽयं कुमिराजकवज्जं
इत्युक्तये । स वासीवमधिरवती इत्यस्ति । तस्य हि वनिर्ना दशस्थानि
स कुमिराजो नाप्यप्युक्तमिति ।"

(३) "कूर भक्त जीवन्मुक्तिदण्डके नैवमुक्तं । अत्र कथयार्थपति-
परिचयः — कट्टनाता मूषका (शृगारि) ।" — जयवर्धनाचार्यभाट्टकथा ०११

(४) "एवं सति शृगारमयी तेन (संस्कृतटीकाभाट्टक) तेषु आचने
अस्माभिस्तु प्राकृतटीकाकारादिपथेनैव कथयिष्ये ।"

अथटीका ०, अथननुत्त ० १६० सं० १०५१-१०५२

(५) कम्मोपादि (गा० सं० ३१३) अत्र स कम्मसं मिथयत्थ दि-
संकाकमणि । सिद्धिं सर्वोपमिद्विभिति जननदि दिप्पत्ते कथापत्ता ।
प्राकृतटीकायां तु कम्ममज्जविपगुणं कम्ममज्जेव सेत्तिवो । सिद्धिं
मिद्वत्तात् ।" — जयवर्धनाचार्यभाट्टकटीका ० १०५१

(६) "अस्मिन् महासुमिदेशमिदने काणु वानोद्वव इति अवजन्ते ।
अग्रे तु पालकितरयो इत्यनेन ज्वररमाध्याह् ।"

— वेदालिखो वसन्तो ० गार्वा सं० २०३०

अपराजितयुरि और श्रीविजयकी लूनाके उत्पत्ते -

(३) श्रीविजयवाचकेषु विजयवत्सेवासिचारे नेच्छति । तथा च

॥१॥ गङ्गा नदी का लूट बहाई दूँदा चित्त बुरा, अब तो जान था धनदायक तो था
के दोहेका धनदायक भिन्न है ऐसा जान था ॥ १ ॥ अब दूँदा भोरे ग पा
दल प्रकाश है —

विरक्षा नमस्तुतिं सत्तु वदुः । इत्येता लिमन्ति सत्तु ।

विश्वरूप भाष्यं तत्त जित्त विगन्ना वागहिं मत्तु ॥६५॥

—योगमहा र

विरला विदुषि न च विरला गणुंति न च हं नम ।

विरम्य साधुहि तथै विरचाम वासनां हृदि ॥३॥ ५८॥

—सं. वि. प्रकाशकालः—

[illegible][illegible]

पाठ्यपुस्तकसंरक्षण विभाग, नवी दिल्ली, भारत सरकार, नवी दिल्ली, भारत

आ' मय संवर-शिलर धर्म्यं वाहिं च निर्मि तं।त्ये ।

† दम्पत्युपवासको छन्दो जम्बावना धृ० १६६५ अक्षर-मोक्षा
हिन्दोसार न० २७३-२७४ ।

“भुत्वति पुनरासीनः निःशब्दिरास्य स प्रभुः ।

उदागच्छे स्तुतिश्लोकान् नारदस्वरश्चरन् ॥ १३८ ॥

प्रभावकवर्णित

४० ब्रह्मासवन भूत्वा हात्रिस्तद्वाङ्मित्रीशब्दधिर्यश्च स्तुतिश्लोककर्म

—विनिश्चयीत्यर्थः, प्रभावकः

परम् उपपन्न ११ हात्रिभक्तियोंसे स्तुतिपरक हीनविद्वत् केवल भाग ही है जिनसे जो एक शब्दको स्तुति होनेसे देवतापरिष्कार स्तुतिश्लोकों कीटिप्पणी (नकल) जानी है और इस तरह एक हात्रिभक्तियों ही (यहाँ ११) हैं जिसका औदीर्य-महत्वा-ही स्तुतिश्लोक-मध्य है और जो उस शब्दपरपर उपपन्न हैं वहाँ (११) तक ही है—यहाँ ११ हात्रिभक्तियों का जो स्तुति-विषयक है, व-उक्त प्रभावक बोध है और उभयपक्षों इनकी वस्तुता उस हात्रिभक्तियोंसे वहाँ की का शब्दों निम्नकी रूपका ब्रह्मा उपपादना सिद्धयर्थसे सिद्धिजनक साधने संस्कार के भी ।

यहाँ ११वाँ शब्द जो प्राप्त होता है वह है कि ब्रह्मावस्था-के प्रभु १ स्तुति-११ प्रभाव “प्रकाशितः स्वयं ब्रह्मा स्वयं-ब्रह्मणः” । प्रकाशित ब्रह्मणोः रूपों में विद्यमाने ‘गत्वा हि’ प्रादिके साथ साथ स्वयं-ब्रह्मणो ही उपपन्न करने उपरके

ने कान्ते कीकृत रूप प्रभाव है —

ब्रह्मासित स्वयंकेन ब्रह्मा स्वयं-ब्रह्मणः ।

ब्रह्मणोः ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ॥ १३९ ॥

विद्यमाने ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ।

स्तुतिश्लोक प्रभावके गत्वा कि प्रभावकः ॥ १४० ॥

ब्रह्मणोः ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ।

ब्रह्मणोः ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ॥ १४१ ॥

॥ गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ।

ब्रह्मणोः ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ।

ब्रह्मणोः ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ।

ब्रह्मणोः ही गत्वा । ब्रह्मणोः विद्यमाने ।

{ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ }

६. ग्रीष्म ऋतु का समय १५ जून से १५ अगस्त तक होता है। इस ऋतु में गर्मी होती है। इस ऋतु में पौधा बढ़ते हैं। इस ऋतु में पशु बच्चे पैदा करते हैं। इस ऋतु में फल फलते हैं। इस ऋतु में पानी सूख जाता है। इस ऋतु में धान, गेहूँ, जौ, चने, मूंग, आलू, बैंगन, टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, मटर, चूने, आदि पौधे बढ़ते हैं। इस ऋतु में गेहूँ, जौ, चने, मूंग, आलू, बैंगन, टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, मटर, चूने, आदि फल फलते हैं। इस ऋतु में गेहूँ, जौ, चने, मूंग, आलू, बैंगन, टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, मटर, चूने, आदि पशु बच्चे पैदा करते हैं। इस ऋतु में गेहूँ, जौ, चने, मूंग, आलू, बैंगन, टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, मटर, चूने, आदि फल फलते हैं।

५ अथवा शास्त्रिकों का प्रयोग करके शास्त्रिकों के साथ
को सब सुखोत्पत्ति ही जोर दिया। यह ही मुक्तकालीन शास्त्रिकों की
दृष्टि थी। इससे ही वे लोग बड़े हुए। इनकी दृष्टि में ही
विज्ञान को ज्ञानी होना है।

[illegible]

॥ १ ॥
 ॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥
 ॥ १७ ॥
 ॥ १८ ॥
 ॥ १९ ॥
 ॥ २० ॥
 ॥ २१ ॥
 ॥ २२ ॥
 ॥ २३ ॥
 ॥ २४ ॥
 ॥ २५ ॥
 ॥ २६ ॥
 ॥ २७ ॥
 ॥ २८ ॥
 ॥ २९ ॥
 ॥ ३० ॥
 ॥ ३१ ॥
 ॥ ३२ ॥
 ॥ ३३ ॥
 ॥ ३४ ॥
 ॥ ३५ ॥
 ॥ ३६ ॥
 ॥ ३७ ॥
 ॥ ३८ ॥
 ॥ ३९ ॥
 ॥ ४० ॥
 ॥ ४१ ॥
 ॥ ४२ ॥
 ॥ ४३ ॥
 ॥ ४४ ॥
 ॥ ४५ ॥
 ॥ ४६ ॥
 ॥ ४७ ॥
 ॥ ४८ ॥
 ॥ ४९ ॥
 ॥ ५० ॥
 ॥ ५१ ॥
 ॥ ५२ ॥
 ॥ ५३ ॥
 ॥ ५४ ॥
 ॥ ५५ ॥
 ॥ ५६ ॥
 ॥ ५७ ॥
 ॥ ५८ ॥
 ॥ ५९ ॥
 ॥ ६० ॥
 ॥ ६१ ॥
 ॥ ६२ ॥
 ॥ ६३ ॥
 ॥ ६४ ॥
 ॥ ६५ ॥
 ॥ ६६ ॥
 ॥ ६७ ॥
 ॥ ६८ ॥
 ॥ ६९ ॥
 ॥ ७० ॥
 ॥ ७१ ॥
 ॥ ७२ ॥
 ॥ ७३ ॥
 ॥ ७४ ॥
 ॥ ७५ ॥
 ॥ ७६ ॥
 ॥ ७७ ॥
 ॥ ७८ ॥
 ॥ ७९ ॥
 ॥ ८० ॥
 ॥ ८१ ॥
 ॥ ८२ ॥
 ॥ ८३ ॥
 ॥ ८४ ॥
 ॥ ८५ ॥
 ॥ ८६ ॥
 ॥ ८७ ॥
 ॥ ८८ ॥
 ॥ ८९ ॥
 ॥ ९० ॥
 ॥ ९१ ॥
 ॥ ९२ ॥
 ॥ ९३ ॥
 ॥ ९४ ॥
 ॥ ९५ ॥
 ॥ ९६ ॥
 ॥ ९७ ॥
 ॥ ९८ ॥
 ॥ ९९ ॥
 ॥ १०० ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible][illegible]

■ बौद्धाचार्य प्रबोधिनायक स्वयं ८३ गुरुत्वाङ्ग-साधनन शास्त्र-विषयो ज्ञाना-
नानाम् ईश ३० ५८ मे १३०० (वि सं २८१ ई २००३) तक खरद
जिया है ।

१ श्रीनैऋत्यायदम शतच्छुके चतुरंगीति-संज्ञकः ।

श्रीभो म मल्लभारी बोद्धस्तुलननुरंधर ई ॥ ८३ ॥

‡ देखो, सैन्य-विषय-वर्षा ३५२ ।

[illegible]

* प्रमाणं पण्डित साहू केवलशास्त्रिणा संशोध्य तदा ।

विष्णुपद-पदाल-पादं तद्वत् तद्वत् नृपदेव ॥' (विष्णुम० १३३) ।

[illegible][illegible]

॥ लघुनाम्नानाम् । न० अष्टाश्वमेधं शीतरेण पितृभिः प्रदत्तम् ।
मन्त्रो विष्णवे नमः ॥ (आ० नि० परिपू० ५६) ।

३. ई. सुवर्णसिक्का उत्तमैः शतशः कलशानामादयेः सिक्कानामैः तथा धनेकं वंश-
प्रशस्तिनामैः कायः कायः ॥

सद्विधि-कर्म-विमला शिष्ट-कृता यशस्-संस्था ।

विदुःसयज्जु-सारा यिवा विद्धि मम दिस्तु ॥ १ ॥

उत्तर :- जलियाँ बाग़ का उद्घाटन १९०८ ई. में हुआ था।

॥ लम्हा विष्णुवरकसहं गणेशवरभई तहेत्र मुणु [हर] वसध ।

३६५३ परिसप्तसहं (?) अदिवासहं पञ्चमुत्पत्तयवसहं ।। ५५।।

दूसरा वह विचारित बात प्रिया है। विचारक यह होता है : 'आत्मबोध' यह
 शक्ति को देकर । १०७ 'विरचित को बोलना' । 'मित्र' ह वह कोई बात
 विचारित रखना हुआ बाहर लाने होता—अर्थ, युक्ति और बने रहने का वाक्य
 अपने को बाहर दे-और अपने को दे-अर्थ करना है । फिर इन विचारों को देकर
 १०८ 'मित्र' को मित्रत्व के अर्थों में देने का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 'मित्र' है । और 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' के अर्थों में देने का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 १०९ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११० 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 १११ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११२ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११३ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११४ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११५ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११६ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११७ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११८ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 ११९ 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'
 १२० 'मित्र' का अर्थ 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र' का अर्थ है 'मित्र'

५ वेदों, अध्यात्मिक और इतिहास ५० ५ ।

६ वेदों, अध्यात्मिक और इतिहास ५१ विचार १, ५० ८२ ।

७ वेदों, 'अध्यात्मिक और इतिहास' को ।

में दाया जान है जो कि स्वयं-कीके लोकविद्वानको ज्ञानमें रखकर ही भाषाके
विकासनद्वारा बच्यो गये है -

वैश्व स्थिते रविमुत्तम वचनेषु गीतं गजोत्तरेषु मित्रवत्पुष्पेषु चन्द्र ।

सामे च तद्विन्दवायमि दाम्बराष्ट्र गाल्य पुष्टा जित्वितवःभुविमपंचनदीपदे
मंगल्यरे तु दुर्धरां काञ्चनास सिद्धममक-

कदरीत्यम शक्यतया नां सिद्धमवच्छिनत्तम भाषा

विज्ञानमप्युक्त होकर २०वीं शताब्दी में 'जैन विज्ञान' काजुर्वैद्यर पुष्पेण
'म' इतिप्रतिष्ठ सावि कर्त्तव्ये काव्यान्तर 'का' वया है च इति मस्तुत काव्यविज्ञान
में भी गये जाते हैं। जोर इसमें यह होना और भी स्पष्ट हो जाये है कि (सकल-
च उपलब्ध) मोक्षोपद्वय चक्र इत्यादि लोकविज्ञान वहाँ सामने रखकर हो 'मित्र'
मया है।

इस गुणवत्त्वसे एक बात को भी समझ कर देखनी है और यह पक्ष कि
सकल-वस्तुविज्ञानसे सम्पन्न 'का' होने पर लोके च 'का' एक वच निम्न प्रकार
दिखा है—

चन्द्रशशाङ्कपादु पटविमलपिकनि धी ।

शास्त्रस्य रत्नहस्तोर्ध्वं कृत्वास्तुष्टयन च ॥१॥

कुलमें इसको ज्ञान १०११ काल-परिमाण उपलब्ध है जबकि उपलब्ध है

ब्रह्मिणः । जैन साहित्य में यह विज्ञान १०११ () नामसे समुद्रोपलब्धि कल्पना
की है और 'का' नाम काकर मस्तुत जो 'का' द्वाका है। इसको कर्त्तव्य-
नदीका होत कृत भी गयीवीच मस्तुत यह होना। कर्त्तव्य विज्ञानमें और १०११
जैके नाम का १०११ मस्तुत ही 'का' नाम 'का' च सम्पन्न था।

३. 'का' नामसे विज्ञानमें 'का' नाम का कर्त्तव्य विज्ञान।

आप का विज्ञानमें विज्ञान, कर्त्तव्य नाम साधुत्तम ॥१॥

४. 'का' नामसे विज्ञानमें 'का' नाम का कर्त्तव्य विज्ञान।

का' नामसे विज्ञानमें 'का' नाम का कर्त्तव्य विज्ञान ॥१॥—इकरना ११

इस रूपसे, सामान्य जैन विज्ञान में 'का' नामसे विज्ञान और उपलब्ध ज्ञानों हुई वीर-
सोपमविद्वानों दिये हैं।

तथा त्रां व दासो सम्यं वसो पवद्वि नराहं ।

कमलां दिपमं दिपमं कलमपनेन द्वापने ॥३१॥

इह घटनाक्रमः यत् सदा मन्त्राय साध है कि विपरीतप्रवृत्तियों रचना
कालिक साधको बुद्धि २० २२ वर्षों में ब्रह्म दासों गहा है । यदि परिवर्त
दासको होनी थी सन्ध्यादिदिनः दम्पते ह्य मन्त्राय गतिं या कि उत्तर किमो
पुनः प्रभाव दान्ध यथा सदा सन्ध्या दिना जाय । यस्तु, मन्त्र-विपरीत
साधना ही अथवा सदा मन्त्राय २०० वर्ष २ वर्षों गतने हुआ है किमपि
सन्ध्या विपरीतप्रवृत्तियों ही रचना साध है । एक हजार वर्षों में इस संकाशः
सन्ध्या १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)
कि सन्ध्या मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)
मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)
मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

(ग) बन्दिपुत्र और कुन्दकुन्दके समग्र सम्बन्धमें प्रेमीजीके
मनकी कालोचना—

ये बन्दिपुत्र कुन्दकुन्दके सम्बन्धमें २००० वर्षों में अधिक सम्बन्ध दास ह्य है
इस सम्बन्धमें कि कुन्दकुन्द के सम्बन्धमें २००० वर्षों में अधिक सम्बन्ध दास ह्य है
मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

१ विपरीतप्रवृत्तियों रचना मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

मन्त्राय १००० वर्ष ३ वर्षों घटित १००० वर्ष ३ वर्षों (मन्त्र मन्त्र १०००)

जिस उल्लेख है परसे कुन्दकुन्द (यथलन्दी) का यतिवृषभके बादको विद्वान समझा जाता है उसका अभिप्राय 'द्विविध सिद्धान्तके उत्पत्तिद्वारा यदि कथायापाहुड (कथाव्यामृत) को उसकी टीकाओं सहित कुन्दकुन्द तक पहुँचाना है तो वह श्रुत गन्त है और किसी श्रुत सूचना ध्वजा श्रुतफलभोका परिणाम है। यद्यपि कुन्दकुन्द यतिवृषभसे बहुत पहले हुए हैं, जिसके कुछ प्रमाण भी दिये हैं साथ ही, यह भी कल्पना है कि यद्यपि इन्होंने यह लिखा है कि गुणधर और यरसेन आचार्यों की शुद्ध-परम्पराका पूर्वाग्रहक्रम उनके बचका कथन करनेवाले शास्त्रों तथा मुनिवनोंका उस समय अभिप्राय है न, उन्हें वास्तव नहीं है ७, पाल्दु दीनो सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्रवक्तारका जो कथन दिया है वह भी उन ग्रन्थों तथा उनकी टीकाओंके स्वयं देखकर लिया गया न, मान्य नहीं होगा—गुला-मुलाया जान परना है। यही यन्त्र है जो उन्होंने धार्यमधु और नागहस्ति को गुणधराचार्यका सहाय्य शिष्य पात्रित कर दिया और भोज दिया है कि गुणधराचार्यके कथायापाहुडकी सूत्रनायापाहुड रखकर उन्हें स्वयं ही उनकी व्याख्या करके धार्यमधु और नागहस्ति को पढ़ाया था। जबकि उनकी टीका जयधराल से स्पष्ट लिखा है कि 'गुणधराचार्यकी उक्त सूत्रनायापाहुड धार्यमधु-पारम्परामे बली बाली हुई धार्यमधु और नागहस्ति को प्राप्त हुई थी—गुणधरा-चार्यसे उन्हें उसका मोथा (direct) प्रदान प्रदान नहीं हुआ था। अर्थात् कि

१ 'गुला-मुलाया जान परना है। यही यन्त्र है जो उन्होंने धार्यमधु और नागहस्ति को गुणधराचार्यका सहाय्य शिष्य पात्रित कर दिया और भोज दिया है कि गुणधराचार्यके कथायापाहुडकी सूत्रनायापाहुड रखकर उन्हें स्वयं ही उनकी व्याख्या करके धार्यमधु और नागहस्ति को पढ़ाया था। जबकि उनकी टीका जयधराल से स्पष्ट लिखा है कि 'गुणधराचार्यकी उक्त सूत्रनायापाहुड धार्यमधु-पारम्परामे बली बाली हुई धार्यमधु और नागहस्ति को प्राप्त हुई थी—गुणधरा-चार्यसे उन्हें उसका मोथा (direct) प्रदान प्रदान नहीं हुआ था। अर्थात् कि

प्रामाण्यमेव गुणधराचार्यनवप्रभाचार्यका कार्य ॥१८६॥

एवं द्विविधा इत्यं भय-पुस्तकगत, समाप्यच्छत् ।

श्रुतपरिपाटया ज्ञान सिद्धान्त कोणकुन्दपर ॥१८७॥

धीषधनदी मुनिना, मोहि द्वादशमहत्प्रारम्भारा ।

ग्रन्थ-परिकर्म कर्ता परम्पराद्वयविलसद्वय ॥१८८॥

७ 'गुणधर-यरसेनान्वयश्रुतों पूर्वाग्रहक्रमोत्पत्तिभि—

र्षं ज्ञायते तद्व्यवस्था-कथकाऽऽत्मन मुनिवनाभावात् ॥१८९॥

८ एवं गथासूत्राणि पञ्चदशमहाधिकाराणि ।

प्रविरच्य व्याचखौ स नमस्तुत्यायामधुस्थाम् ॥१९०॥

[illegible]

रामचन्द्रिका के लिये दो अन्तिमोंमें प्रकट है —

“अथ त्वं कस्यचिद्विद्वान्निष्ठं विद्वद्भ्यः सत्त्वरजस्तमः, त्रिदशलोका
रश्मिरंशो, शब्दलोकाश्च दत्त, पुनर्जन्तुर्गो रज्जुरेव । अन्तर्गतोऽयं दृष्टुः
अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे
वद स्वरसम्पत्तः ।” — (पृष्ठ १ पृष्ठ २० टीका)

“तत्राऽऽलोक्यते स्वरज्ञानपनो वासंश्चर्यमकं भागं बुद्ध्या विरजोक्तम्
लोकैकैयम् दत्ताऽऽलोक्यं दत्ता । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो
तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव
रश्मिरंशे ।” — (पृष्ठ २० पृष्ठ २० टीका)

इन दोनों उक्त्यो ३७.३८ व ४० व ४१ के आदि शब्दोंमें अन्तर पूर्णमात्राको
लिखे हुए हैं। ये दत्ता और जगत् सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति
चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं
सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः
रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः
अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे ।
अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति
चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च
जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं
विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं
दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे ।

मृतसंज्ञितोऽयं सर्वज्ञो नृसिंहो गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः

अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति

चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च

जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं

विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं

रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः
अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे ।
अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति
चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च
जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं
विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे । अन्तरं तु गुणैश्च जगत्सर्वं सत्त्वरजो तमोऽयं
दृष्टुः अपराधो नास्तीति चात्रात्रापि द्विविद्विष्ठं विद्वद्भ्यः रज्जुरेव रश्मिरंशे ।

[illegible]

सुदध्मिस्त्मासञ्चिन् गृन्निर्गं तुंगल नद न वेधेः
पद्मगङ्गा नदी नदी नदी नदी नदी नदी नदी नदी नदी नदी

[illegible]

● "इतरो रितको लोकादुःखस्य, यदिऽप्यः" (३-) — श्रवणंतिष्ठि
 "किमुपश्रवितं श्रेष्ठं वाह" भाकानुवोक्तः" (७-६६) — श्रेष्ठंतिष्ठि

प्रकृत पद्योक्त उद्भव विद्या जाता है, विधानं चान्न तन्ने विषयकं विचारको
धरो प्रसार इत्युक्तं कर नक

अथ एत पद्यः साधुविरि मित्रस्वेवेष्टे शिरस्वदे धर्मः ।

तस्मात्पुत्रं पुत्रं पुत्रं पुत्रं च (च) पतिशिरः - - ४

स्वातं शान्तं दमार्थं गुण्यां विद्यां पुत्रस्य हितवधाचत्वा ।

विद्वत्सत्वा विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २२३।

विशेषवचनं

प्रमत्त-अथ विद्वद्भिर्भोऽर्थो जायमानोद्वेगते ।

मुक्तं साधुपुत्रं भोऽर्थो न तस्मात्पुत्रं च पुत्रपुत्रं २२४

स्वातं दमार्थं विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २२५।

नमः शान्तं दमार्थं विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २२६।

अथपदिगदहं २२७।

विशेषवचनं की वही। वाचार्थ यह बनभागत है कि 'शो प्रमातो, अथ
शौर विद्यायै शान्तं दमार्थं विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २२८।
मुक्तं साधुपुत्रं भोऽर्थो न तस्मात्पुत्रं च पुत्रपुत्रं २२९।
स्वातं दमार्थं विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३०।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३१।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३२।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३३।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३४।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३५।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३६।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३७।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३८।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २३९।
विद्यायाः प्रदीपः अथपदिगदहं २४०।

अथपदिगदहं २४१। अथपदिगदहं २४२। अथपदिगदहं २४३।
अथपदिगदहं २४४। अथपदिगदहं २४५। अथपदिगदहं २४६।
अथपदिगदहं २४७। अथपदिगदहं २४८। अथपदिगदहं २४९।
अथपदिगदहं २५०। अथपदिगदहं २५१। अथपदिगदहं २५२।
अथपदिगदहं २५३। अथपदिगदहं २५४। अथपदिगदहं २५५।
अथपदिगदहं २५६। अथपदिगदहं २५७। अथपदिगदहं २५८।
अथपदिगदहं २५९। अथपदिगदहं २६०।

अथपदिगदहं २६१। अथपदिगदहं २६२। अथपदिगदहं २६३।
अथपदिगदहं २६४। अथपदिगदहं २६५। अथपदिगदहं २६६।
अथपदिगदहं २६७। अथपदिगदहं २६८। अथपदिगदहं २६९।
अथपदिगदहं २७०। अथपदिगदहं २७१। अथपदिगदहं २७२।
अथपदिगदहं २७३। अथपदिगदहं २७४। अथपदिगदहं २७५।
अथपदिगदहं २७६। अथपदिगदहं २७७। अथपदिगदहं २७८।
अथपदिगदहं २७९। अथपदिगदहं २८०।

इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है वह अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है।

इसके विषय एक ही है और वह है अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है।

इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है। इस महाकाव्य में अनेक-अनेक विषयों का उल्लेख है।

की कल्पना की है और अपने सारा यह दृष्टान्तों पर बल दिया है कि इस विचारोपपत्ति की वजह से चित्तवृत्तः। त्रिमासिक इत्यादि नामों को ही याचकत्व का विचार देकर यह निरालम्बता भी रही। यदि है तो उसकी श्रुति का इस भावार्थ 'यत्तु स चित्तवृत्तः' काव्यक द्वारा की गई है, वह भी सुनिश्चित नहीं है, क्योंकि इस बात और उसके प्रकाश कर्षकी मन्त्रि बन्धन के मत नहीं है। (१) जिसका स्पष्टीकरण इस विचारक द्वारा नया विचार का प्रकाश है। और इसीसे वाचकत्वों का यह निरालम्बता कि "इस विचार के अन्तर्गत का संक्रमण का प्रकाश १३८ (वि० न० ८३३) से प्रकाश किन्हीं भी साधनों में नहीं है।" इसका अर्थ है कि चित्तवृत्त निरालम्बता में है मन्त्रि बन्धन का प्रकाश है। इसका अर्थ है कि चित्तवृत्त निरालम्बता में है मन्त्रि बन्धन का प्रकाश है। इसका अर्थ है कि चित्तवृत्त निरालम्बता में है मन्त्रि बन्धन का प्रकाश है।



समयपूर्वकता, निश्चिन्ता रहित, वहाँ इनका दूरस्थविक तथा तार्किक नाम ज्ञान प्रकट है ॥

दुसरे प्रयासमें जिन शिवलिंगों को जन्म है वह जादूद्वारा ही जन्म पाते हैं। प्रभु रूप 'वायुदेवशक्ति' पर परमात्मनो है, क्योंकि वायु ही प्रलय परमाणु वायुतंत्रीका काठ वस्त्रों में जितना -

अङ्गाः हर्षकः श्रीपादः वाङ्मयसिन्धो गुरुः ।

विष्णुं हृदयानुदा हासयन्ते प्रीतिवर्मला ॥

[illegible]

शुद्धभावस्य भक्त्या नैव रणोत्तमैव प्रपे रवौ ।
वर्क्ये स्मरौ जिनस्मरज्जो पादभद्रवृत्ताविता
विद्यानन्दमुनीश्वर स गुरुवाङ्मयं विद्वानन्दक ॥

[illegible][illegible][illegible]

भूधराध्यानुवर्ती मेघ रज्ज्वन्नापगतः शुभः ।
संयताऽपि च पात्रार्थी नानुसौ पात्रकपरी ॥

[इसमें आनन्द होना है कि "अपवर्ग" पहले १८००-१८०१ के बीच के
 और उस गणितज्ञों के द्वारा ही १८००-१८०१ के बीच ही वे गणितज्ञों में
 जन्मे हैं और उसी के अनुसार १८००-१८०१ के बीच ही वे गणितज्ञों
 द्वारा ही १८००-१८०१ के बीच ही वे गणितज्ञों द्वारा ही १८००-१८०१ के बीच ही वे गणितज्ञों

[illegible]

[illegible][illegible]

‡ जैनधर्मावलोकन से जानकर होता है कि इस आकाश में सब सब दृष्टिमान होनेवाले तत्वों से घेरे हुए है। प्रत्यक्ष से यह कहेंगे कि भूतल प्रत्यक्ष ही। और केवल ही प्रत्यक्ष दृष्टिमान से ही प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष ही।

(२) विद्यामन्दके बाद होनेवाले प्रधानतः और बादिराजर्षिके प्रधान छात्राचार्यों में श्री 'विद्यामन्द' नामके ही चारका उल्लेख किया है । (३४)।

विद्यामन्द-सम्पन्नपद्मगुह्यतां निवृत्त्यं यत्नोन्मत्तम्
—प्रवेदकपदयोगेण

अज्ञमूष्य गुरुकुलं विद्यामन्दस्य विराजम् ।

भूयधत्तामप्यर्ककारं दोर्मिरगदं रक्षति ॥

— वाग्देवगवर्तित

(१) जिनार्चकों में श्री 'विद्यामन्द' नामके दो छात्रका उल्लेख मिलता है और यह सभी ज्ञातिये नहीं किया कि विद्यामन्द ही महान् वाग्देवरी है । ज्ञानपुत्र प्रथमे गुह्यतां उक्त विद्यामन्दसे जिनका वर्णन करके दिया जा चुका है सोलोकों के अन्त में एक गुह्यतां कहा है । इसमें अज्ञमूष्यके द्वारा 'विद्यामन्द' को स्मृतिके योग पद दिये हैं और उन्मत्त दोर्मिरगदं अर्थात् अज्ञमूष्यके द्वारा (अज्ञमूष्यके) प्रधानपरीक्षा का-ल-गोष्ठा, यत्नोन्मत्त, विद्यामन्दगोष्ठादय और भूयधत्तामप्यर्ककार—इत्येक ही गुह्यतां का वर्णन है । (२) विद्यामन्द नामके ही उल्लेख किया है । (३४)।

आत्मचकार कामाद्यंशप्रसीमासिद्धं धर्म ।

व्याप्तिशुद्धिस्तथास्य सप्तमस्यैव महत्वात् ।

अः प्रमाणसम्पन्नस्यैव परीक्षाः कृतवन्तुः ।

विद्यामन्दस्यामर्ण्यं च विद्यामन्दसहाय्यं

विद्यामन्दस्यैव विवेचिनोवाग्देवतामर्ण्यैककारं ।

अयमि कर्त्तव्यपुत्रतां श्रेष्ठचूडामणिरस्यगुह्यविशेष ॥

(१) विद्यामन्दकी उक्ति में दो बातें प्रकट हैं जिनमेंसे 'कर्मोक्त' की उल्लेख वाग्देवरीके नामक नाम के योग उल्लेखों में है । (२) आत्मा और न वाग्देवरीकी उक्तिमें उक्ति उल्लेखों का उल्लेख विद्यामन्दके नामके साथ ही पाया जाता है । यह गुह्यतां बात है कि विद्यामन्दके रूप प्रकाशक अथवा संशोधक महत्त्व के योग उल्लेखों के अन्त में एकका नाम उल्लेखों के साथ जोड़ देते हैं । वाग्देवरीकी उक्तिमें उक्ति दो कर्मोंका उल्लेख मिलता है—

दीनः आत्मापं हे । इन कन्वर्ग वाचनेन १० स्वारोचं यत्का कन्वर्ग उन्नेके
वाचने-द्वारा निम्न प्रकारसे विद्या कथा है —

‘कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः/ममनसास्तुते—

कन्वर्गानुपपन्नत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥

वासति व्यस्तकस्यापि मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः ॥१३५॥

कन्वर्गानुपपन्नत्वं कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

कन्वर्गोत्तरां न पात्रस्वः मन्त्रोक्तत्वं मित्रलेखणः

मन्त्रोक्तत्वं ननु दृष्टा मन्त्रेण ॥ १३५॥

● यह वाचनेमरी का नहीं प्रसिद्ध स्वरूप है ।

मंदरीकं चार कलस' मन्मथोव दखनन्दी, सुनिनि कट्टारक (दंश , और वसव
दीपक आत्मनंय नायक उपान आधायम दूत है । दया।

“तत्” त्वयैव महत्सुगुणं भाति समन्तदूरपरिमितं सत्त्वं
 अत्रि चरितं नदीयं श्रीमद्भुमिसरंभापेसर्त्तु अत्रिचरितेभ्यः भवामि
 महिं गच्छतीति चिन्तु चयन्नरं ।

५२३ दि अ. श्रीनिधीशास्यमप्यगात् ।

वेप भाल्यसो यच्छतन्दी गुणावली ।

अथ हि कालिक भूमिनि अष्टावहरे अथ हि परमेश्वर भूमिपदीयक
 रम्भु ब्रह्मात्मिक-दायक रत्नविभार वरुण वदवापिनं अष्टवक्त्रकम्
 आननं कर्तव्यमस्मिन्नाद्यदि यत्नः ॥

[illegible]

विद्यया च सर्वकारेण साधयाम्यसमाप्तिम् ।

कृष्ण उक्तं च योगिना श्रीकृष्णैः सहस्रभुजः ॥

[illegible]

मत्त हस मूल्य परीक्षण, विषय-धीर सङ्गोचनम् बरते येन किञ्चित् एव
हं जाति है कि स्वामी गणकेन्द्रों कोर विद्यालयों में दिव्य भाष्य में रूप है.
बीजोंका ज्ञानमूल विद्य है, दण्डमुद्र विद्य है और अन्ध भी निद्र है, और इसविषे

(द्वितीय लेख)

सन्तान्तके प्रथम वर्ष की द्वितीय दिग्दर्शने १२ दिवसपर बाद १९२६ को वेने 'स्वाधी पापकेनने और विद्याभक्त' नामका एक लेख लिखा था, जिसमें पाप-केनने और विद्याभक्तके तत्त्व-विषयक ठस प्रश्नको दूर करनेका प्रयत्न किया गया था जो विद्वानोंमें ठस समझ केना हुआ था और उक्त द्वे। यह स्पष्ट किया गया था कि स्वाधी-पापकेनने और विद्याभक्त वां विषय वाचार्थ दूर है—दोनों-का अर्थभक्त दिवह है कल्पतपुत्र भिन्न है और समझ भी भिन्न है। वाचार्थको विचार्यो ज्यों अस्तित्वके विद्यापुत्र वाचार्थ समझतुद्धयसे भी भूले हुए हैं—अपत्यके प्रयोगों उनके वाक्य-रचना उल्लेख है—और उक्त तथा भिन्नान्तके प्रत्यक्ष कई उदाहरणवाला प्रमाण है। इससे स्थित है कि केना यह लेख विद्वानों-को पताच जाय और उक्त उदाहरण विद्वानोंका ठस ज्ञान दूर हुआ जना का रहा है। अनेक विद्वान् होने ठस लेखको प्रकाशार्थ लेख करते हुए भी ऐसे करते हैं कि।

ये ठस लेखमें दीर्घांशी लक्षता-विषयक दिव्य वाच अर्थार्थको ज्ञान की गई थी और इन्हें लिखार अनेक किया गया था प्रत्यक्ष एक प्रकाश 'समस्तप्रकाश' कल्पना की विधि अकार था—

'साधकप्रकाश' लेखक कादये एक अथवा किया है कि—

'स्वाधी-आध्यात्मिक विद्याभक्तिकार्यमाध्यात्मिकसिद्ध्यभिप्रायसिद्धाद्युक्त तत्त्व सिद्धयते - तत्त्वार्थसिद्धार्थ सम्यग्दर्शनं। न तु सम्बन्धशालीन-निर्वचनमात्रसिद्धये सम्बन्धशालीनत्वविशेषादश्रीमद्विपत्तिविश्रुतिरूपे सिद्धि-वातदर्थे अज्ञकृतवचनं न युक्तिमदर्थवि सम्बन्धितारक्यं शायदाक-रोति।'।

इसमें अनेकवाक्यके कर्ता विद्याभक्तिको ही पापकेनने वक्तव्य है कि—

इह प्रमाण सत्यते पढ़ते हाफ्टर ४० जोकि पात्रकमें अपने 'अतृही और

४ हाफ्टमें पढ़ाएँ 'अचक्रुष्टचक्र'को अर्थ, वाचार्थ ४० केनापापप्रकाशकी भी लिखते हैं—'अतृ समस्तप्रकाशको दूर करनेके विषये, सम्बन्धार्थ १ १७-१९ पर मुद्रित 'स्वाधीपापकेनने और विद्याभक्त' लेखक विपत्ति रोका चरहिने।

हन्वकारकी हस्त विनोय पुंजी और उसके सद्वृत्त कारकी ईश कायिकी
दोषमते साक्ष मायुष होता है कि यह एक बहुत बड़े यी स्वयं-भूषण साधारण
साधारण वा, संस्कृतान्तरित एक बड़े यी और न हन्व-रचनाकी कोई
शोक बना ही वह जानना वा ३ उक्त यहाँ मायुष किन्तु प्रकाशकी वासना प्रकाश
प्रेरणामें प्रेरित होकर यह एक अन्तर्के निरन्तर प्रकाश होता है ।^१ अन्तु प्राप्तिसे
हस्त विनोयका लक्ष्य अनुभव करानेके निवेदनमात्रकी हस्त विनोय पुंजी साधारण
कुछ किम्वदंति करमात्र ज्ञाना है—

(१) वाक्यका प्रकाशनामक सका प्रतिज्ञावाक्यांको लिखे हुए आधिक
अथ इस प्रकार है—

“ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ वाच समस्तस्वस्वधारा शिखरवे ॥

प्रसन्न परमं ह्य परमात्मनविधावकं ।

समस्तस्वस्वधारा परमं पूर्णमात्मनं ग्राह्यम् ॥१॥

सोऽस्माभ्यं तिनैकस्य प्रथमं वृत्तं दितः ।

सद्दिना समस्तस्वधारा चरितं निरूपकं भवेत् ॥२॥

समस्तस्वधारा शिखरं परमं पूर्णमात्मनं ग्राह्यम् ॥३॥

समस्तस्वधारा शिखरं परमं पूर्णमात्मनं ग्राह्यम् ॥४॥

समस्तस्वधारा शिखरं परमं पूर्णमात्मनं ग्राह्यम् ॥५॥

समस्तस्वधारा शिखरं परमं पूर्णमात्मनं ग्राह्यम् ॥६॥

समस्तस्वधारा शिखरं परमं पूर्णमात्मनं ग्राह्यम् ॥७॥

न. ३ के स्तोत्रका एक हीनक काव्य स्वादीने करत रचना है परन्तु
‘सुगम’ की नहीं कही है । सुगम परका प्रथम १६५ ह्य स्वयं-भूषण वा । तिनै
दोषमते निरूपक ज्ञानपर यह की । यी स्वयं भवे कथा है, ज्ञानवि प्रथम यी स्तोत्रो-
की साध कथना की । वाक्यका १६५ ह्य स्वयं-भूषण वा । तिनै
है । दोन निरूपक एक काव्य नहीं ज्ञानवि । ज्ञानवि ‘सुगम’ का नहीं न कथा
जाना किम्वदंति है । ह्य कथना है स्वयं-भूषण वा । तिनै
कथना काव्य पत्रा है, वा स्वयं-भूषण वा । तिनै
है । दोन निरूपक एक काव्य नहीं ज्ञानवि । ज्ञानवि ‘सुगम’ का नहीं न कथा
जाना किम्वदंति है । ह्य कथना है स्वयं-भूषण वा । तिनै
कथना काव्य पत्रा है, वा स्वयं-भूषण वा । तिनै

धारात्मक कई शक्ति-वाक्य ही वाक्यिक व्यवस्था है। उनके इस श्लोकका उल्लेख उक्त न लेंवा ही, बल्कि इसके स्थानपर कोई दूसरा ही श्लोक रखना चाहता ही और इसीसे पहले 'सुखम्' तथा चौथे पंक्तिके अंक '४' को कायम रखना ही परम्परा की होती (अती परिवर्तनमयिके अंगम् नष्टकर यत्न उक्त श्लोकको ठीक न लेंवा ही। परम्परा कुछ भी हो, जन्मली इस विचित्रपद्धति परकी मृदुला अन्तर विमली है कि वह संभवति इतने सम्भवकारकी निम्नी हुई अवस्था मिलाना हुई है।

'आद्य सम्भवतश्चक्रवर्ती क्षिप्रवर्गे' इस वाक्यसे 'सम्भवतश्चक्रवर्ती' विभक्ति-से गुण्य प्रयुक्त हुआ है। जो एक मांसे व्यापकता-व्यवस्था अनुचित है। कहा जा सकता है कि यह वाक्य किसे दूसरा मिली होगी और नहीं सम्भव-व्यवस्था के साथे मिलती, तराशा पुनः नया हुआ। परन्तु जब साथे १८८५-कालकी प्रत्येक कोरी बांकी प्रयुक्तिवाली देखा आज है वह वह अन्तर्गत अन्तर्गत नहीं होता। इतिहासके निम्ने चौथे श्लोकमें प्रयुक्त हुए 'महद्व' वाक्य 'क्षिप्रवर्गे' वाक्यको ही कीजिए, जो संभवतश्चक्रवर्ती वाक्यी वाक्यी सम्भवतश्चक्रवर्ती है और इस वाक्यको व्याख्या करना है कि उसका सम्भव व्यापकता अन्तर्गत इस विनया प्रयुक्त था। इस वाक्यका अर्थ होता है 'यह (सम्भवतश्चक्रवर्ती) मैं यहां निवास करता है' यह कि होना चाहिये था यह कि 'यह सम्भवतश्चक्रवर्ती मेरे द्वारा महद्व निवास करता है' अथवा 'यह इस महद्व निवास है। और इसीसे वह वाक्य-प्रयोग वैदिक ज्ञान रखता है। इसके 'महद्व' की प्रकृति अन्तर्गत' होता काठिने का 'अर्थ' के साथ 'क्षिप्रवर्गे' का प्रयोग नहीं करता, 'क्षिप्रवर्ती' का प्रयोग उस लक्ष्य है। ज्ञान प्रकृति है सम्भवतश्चक्रवर्ती और 'क्षिप्रवर्ती' के अर्थको जो शीघ्र नहीं सम्भवतश्चक्रवर्ती था।

[३] इसी प्रकारकी अन्तर्गत और वैदिकी ज्ञान के निम्न सम्भवतश्चक्रवर्ती को पाई जाती है, जो 'सम्भवतश्चक्रवर्ती सम्भवतश्चक्रवर्ती' नष्ट पर श्लोकवार्तिकके २१ वाक्यको श्रवणमयि अनुवृत्त करके बाद 'इति श्लोकवार्तिके ॥११॥' निम्नकर अन्तर्गत कथनकी प्रयुक्तिवाक्यसे निम्न गये है:—

इं मे उतिता-वाक्य दत्त प्रकार है—१ सम्भवतश्चक्रवर्ती अन्तर्गत, २ सम्भवतश्चक्रवर्ती अन्तर्गत करीब, ३ अन्तर्गत अन्तर्गत निम्न गये।

ही जहाँ प्रथम एक छोटे खण्डमें भी लिखा है। अब दूसरेखण्ड कालावधि का लक्षण देसके मनु ४६६ के मतानुसारे लिखित है। इसलिसे यह लोग 'अव-कल' की उही मन्त्रिक व्यवस्थाका होना चाहिये। अब दोनो मतानुसारे दोनों मतोंके ही का विचार, यह पूरी सीरेमें नहीं बड़ी जानकारी। सम्भवतः इसका लक्षण देस-की सीरेमें समान क लक्षण है। इसके विचार करने करने अनुसंधानके लक्षण से लिखा हो है—

We may now sum up the results of our investigations. We find, then, that there were two branches of the Kachchabharu, one in which may be described as Gop branch and the other as the Varan branch. It is just possible that there was some connection between the two branches but we have no sufficient materials for settling the question. We find, too, that the princes mentioned in our plates belong to the Varan branch, and that there is not a single of ground for effecting descent to a different division from the Varan branch was concentrated in Su. We find in a paper we find, in fact, that these princes appear from their recorded grants to have been independent sovereigns, and not under subordination to the Chalukya kings, as their successors were, and that they flourished in all probability before the fifth century after Christ. Lastly we find that there is great reason for believing that these early Kachchabharu were of the Jain persuasion, as we find some of the latter Kachchabharu to have been from their recorded grants.

इन परिणामों से, काशीमानवों के लिये अनुसंधानका लक्षण निकलता है और यह एक उद्धार है—

हमें ऐसा निश्चित हुआ है कि कवचवर्णकी दो जातों को, जिनमेंसे एक का 'गोत्र' राजा और दूसरीको 'जनताली' क्षात्रके तोरपर नियमना किया जा सकता है। यह विम्वुन समझते हैं कि इन दोनों जातोंमें सर्वथा कुछ सम्बन्ध था, परन्तु एक समय उस सम्बन्ध निरुप करके बिये द्वारा एक छायाही नहीं है। हमारा यह जो निश्चय है कि जिन राजाओंका हमारे इन वचनों सम्बन्ध है वे 'राजाही' जातोंके थे, और यह कि जन्मे से वे कल्प लक्षणोंके वचनों निरुप गये जनताली स्वयंसे एक विश्व विद्यालय स्थापित करनेकी कोई कांक्षी प्रमाण नहीं है। इसके सिवाय, हमारा निश्चय यह है कि वे राजा अपने वधाले क्षात्रके सम्बन्ध लक्षात् मान्य होन हैं न कि मान्यता राजाधोके मातहत (मन्त्रि-काराधीन), जैसा कि इनके उत्तराधिकारी थे। और यह कि वे, क्षात्रोंके सम्बन्ध-क्षेत्रोंको जमाने में वे पर भी ईशाने काद गोत्रही सन्तुष्टीके पहले ही साम्य करने हैं। अन्तमें हमारी यह मन्त्रोद है कि वही इस क्षात्रके विरुद्ध करनेकी बहुत करीब जगह है कि वे प्राचीन कर्म-जनमन्त्राधीन थे, जैसा कि हम कुछ क्षात्रके कर्मोंको उनके दास्यको करने वाले हैं।

इन तीन जातोंको बहुतसे सम्बन्धना बरकरार कुछ ऐसे विषयों द्वारा ही कि जिसमें एक दूसरेको देखकर विद्या बरा है, यह कर्म-व कुल ही कर्मोंके लक्ष्य होता। परन्तु यहाँ हमने भीलना पल लिया गया है, यह प्राचीन निश्चित नहीं हो सकता। सम्भव है कि वे एक दूसरे क्षात्रके बिये गये हो जिन जनके ईश-पर प्रकाशके लक्षण लक्षण होने लगे हैं। तीन वचनों 'स्वाध्याय' और 'आनुवाक्य' का उद्देश्य जैसा जैसा है किनके अनुदानपूर्वक सम्बन्ध राजा कर्म-विश्व जगत के राजा के लक्षण है 'स्वाध्याय' के सम्बन्धमें कोई कुलकुल को। इनमें राजाधोके लक्षणके सम्बन्धमें हमारा बरकरार आनुवाक्य किया जा रहा है। परन्तु स्वाध्यायके लक्षण ही ही उनका निश्चय परिचय करा है, वे लक्षण जिनके लक्षणोंके लक्षण हैं। परन्तु हमने निश्चित रूप से उन लक्षणोंके लक्षणोंके लक्षणों का मान्य होता है जिसकी अन्धा कुछ लोक मान, कुछ सादर और कुछ

१० यथा: '१' 'क्षत्री' जातेवरी जैव कोमारी चैवनी तथा ।

क्षत्री जैव वारही जातु लक्षण लक्षण ।।"

[illegible]

मूल (Text)

विदुषः प्रपञ्चसंज्ञायाः मर्मद्वारद्वये १५

वार्ता: ४०१२ हृषीकेशजीनं प्रसन्नं गीतं श्रुत्वा:

[illegible]

* धुनवें एका स्त्री है यह 'धुनव' भा' होल चाहिये ।

१ अन्तर्गतो मे यत् एक वाक्य आन ते कि वहाँ शिवाग्ररोका इतना अधिक प्रयोग दिवा गया है वहाँ 'सत्त्व' और 'तत्त्व' में 'ठ' अक्षरको लिख वहाँ किवा गया है ।

● फूलों से सजा ही है।

राज्यमिच्छन्तस्मान्निभिः तस्मै यस्मै चक्षुःभूमिस्तस्मै तस्मै तथा (१) कदा
अङ्गिरसं त्रिभिर्बुधैः सङ्गम्य परिपालितं पलायि न निवर्तन्ते पूर्वराज-
कुलानि च तस्य दातुं भूमिह्यच्छर्वं ह (१) : स (म) म्भ्यत्पलायनं वानं वा
पालनं वेति इत्यन्तर्द्वे वानुपालनं स्वदत्तां परवर्त्तं वा वो द्वेव वसुध्वरां
दधिवर्षेन्द्रस्यापि नरकं पचने नृ सः श्रीकृष्णनृपपुत्रेशकदम्बकृतकेन्दुना
रागापिरोत्तु ऐवंन वना भू (१) मिन्विभन्वते दद्यात्तुसुतास्वाद्दुतपुत्र-
रुमोत्सवा इदमस्मै हवीरंश्च दत्ता जेनाय भुवि वसत्वर्षिभ्याकृता
सम्यभूतहितंयत् रागाभारिहरोक्तं। अन्तर्द्वेन्द्रमहारवत् ।

३४ सोमो दामपथोदरमे विज्जिज्जित ऐन्द्रादिक भक्तिर्बोका वना
वना। हे—

१ स्वाजिभयहस्तं—कुम्भ । २ ह्रीःसी—भूध्व सोम इतिह भूमी । ३ दा-
पिपथी राजा । ४ पुत्रेभ्यरदमा—राजा । ५ विज्जिज्जितपुत्रेभ्यर्दमा—मह-
राजा । ६ कृष्णवर्मा—महाराजा । ७ दम्बपथी—बुधराजा । ८ दामपथि—
मोक्षक । ९, नरवर्- विज्जिज्जित ।

इयं भक्तिर्बोका मन्त्रार्थं बोध विधी विज्ञान् भर्तृको दूतने वयो विज्जिज्जितं
कमला कवचमिन्द्रां कति वने, बुद्ध विसेव क्षाल गात्रुव ही वो वे कृपाका
कृती बुधवत् कस्मेका कृद् दम्ब, विज्जिज्जित एक कम्बज जीव ईन्द्रादिक दम्बः
भरर्षी बुद्ध कृष्णराजि विजे ।



भार्य और स्नेह

अश्विनीपुत्राचार्य वसन्तवासिने. इससे मन्वाचार्यविद्वत्पुत्र प्रथम, महा-
भयु-योको दो भागोंमें बंटता है—१८ 'भार्य' और दूसरा 'स्नेह' : बीस। कि
उससे निम्न की सूचीमें प्रकट है—

“भ्रातृ-मातृपौत्रादभ्युत्पद्यः ।” “आचार्यो मन्वाचार्यकः ॥८॥ ॥

परन्तु 'भार्य' किसे कहते हैं और 'स्नेह' किसे ? दोनोंका प्रथम प्रथम
क्या सम्बन्ध है ? ऐसा कुछ भी नहीं कहसकता । प्रत्येक एक विषयमें योग्य है ।
श्री, अश्विनीपुत्राचार्य बड़ी संख्यामें भयु और एक भ्रातृ है जिस स्नेहजन्यता बड़ा भागा
है—भार्या रूपमें उक्तस्नेहजन्यता बन्नाया जाता है । अर्थात् इस भावजन्य स्नेह-
जन्यता होने पर भी बहुत कुछ विचारजन्य है, फिर भी यदि कोई दूसरे भ्रातृ -
विषयमें प्राप्ति करवालेके नामों—बहु भयु 'भार्य' नाम कि बड़े उपाधिपति-भार
ही है, इस देखना चाहिये कि उसमें भी 'भार्य' और 'स्नेह' का कोई
सम्बन्ध नहीं दिखता है या कि उसमें स्नेहमें मातृपुत्र होता है कि दोनोंको पूरी
और लोक प्रसन्नता बलान्तरता बीस कोई प्रसन्नता उसमें भी नहीं है. परन्तु
मेवपरन्तु कुछ स्नेहजन्य विचार हुआ है और यह सब दृष्ट प्रथम है—

“द्वित्रिषा मनुष्या मरान्ति । आचार्य मिश्रश्च । तत्राचार्यो बलविशः
तेजसाश्चेत्तयाचार्यो बलविशः । कर्माचार्यो मातृपुत्रोऽस्ति । तत्र बलविशः

॥ स्नेहाम्बरके यहाँ 'स्नेह' के स्थानपर 'स्निग्ध' प्रकट हो उक्त
जन्म होता है, जिससे स्नेह प्रथम प्रकट होता है ।

मिति । तत्पश्चात् । एवमन्तगुह्यतन्त्रविशिष्टद्वन्द्वशुद्धस्वनाभावे ॥ एकरस-
शास्त्रेकभक्तद्वयं तस्य श्रेयःशास्त्रस्य स्वनामसिद्ध्युज्ज्वलनाभावे वेदितव्या ॥
शिवरित्तुः पुन्यवैभक्त्येयं पदपञ्चाशदिति ॥’

[illegible]

इस तरह आपका व्यवहार देखकर, हमने विपरीत सम्भावनाएँ सब पकड़-
ली थीं। हमें लगना शुरू हुआ कि अगर वह सचमुचे में एक ही व्यक्ति है तो वह
कैसे हो सकता है? हमने सोचा कि वह तो तो बहुत ही बड़ा व्यक्ति होगा।
हमने सोचा कि वह तो बहुत ही बड़ा व्यक्ति होगा।

आवृत्त नहीं होनी — ठीक कहना नहीं बनती । यों इन्होंने एक ही बात
सदांच ज्ञान रखी है ।

[illegible]

५३ भूमिभया भङ्गत्वा प्रसिद्धा स्वभावाद् यः ।

શ્રુ. એ પે કલ્યાણકારનાદિદર્શન અર્થ ॥

[illegible]

संस्कृत-भाषा-विश्व-कोश-में श्री-विद्यानन्द-शर्मा-के-प्रयोग-और-श्री-चिन्ता-॥

“दृष्ट्वैर्गोत्रोवकाशेरावोः, नीचैर्गात्रोदकाशेरावोः स्वेष्टाः ।”

द्वारर सेना लिए जाई, जस हो वा जानाए जाई वे सब 'आम' हैं। और दुई तरह दुर्भाग्यजन तथा कुलीजन जिनक अपमान वे चतुरही भी सब आम उड़ाते हैं। अन्ध-धर्मपरिचरों को चरको गुणोन्मत्त भी है—बड़े-बड़े बिद्वान्, राजा तथा साधु-प्रां बलानेवाले मन्त्री आदिक को दुष्ट हैं वे सब आम उड़ाते हैं। और जिन दुर्गुणहीनों तथा सबतर उभेच्छाओं आदिपराएक विषय आशयपूर्ण दुर्गुण-दुष्टि आदिक द्वारा आम लोग समझने, वे भी आम हैं। आदि

हयरेनेऽनचुरम्लेच्छान पञ्चाषाधिविधायिनः ।

कृष्णद्विप्रदानागौ श्वमात्कुपदुषकर्म ।

इसके आगे-अन्धधर्मों तथावा गुरुभयर् अन्ध और जो लोका दुष्टक जाती हैं ४ अंग विद्यामान विवेकन है कि वे दुष्ट मनुष्यको दुष्ट करनेके गुरु प्रयत्न करें—दुष्ट मानकों लोग जिन्होंने कि अन्धधर्म-आदि विषय कहते हैं और 'अन्ध' किसे ? दो-तीस आदिकों मनुष्य के आदिपराएने क्या ठीक होता है ? आदि दुष्ट मनुष्य भिन्नतर मनुष्य की मनुष्य करने और अन्धधर्म परित्याग ही मनुष्य ।

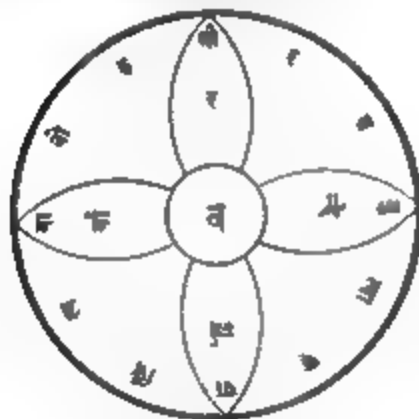


[illegible]

(५) पञ्चसूक्तः

अथ गौतमसुत्रेण वक्ष्यते नु गच्छान्भवः ।

सुखं धर्मात् स्वर्गाय च स्वर्गानामहो रयः ॥२३॥



पृष्ठं १६, २५ संशोधितं

अतः सोमने प्रदत्तान्तरको 'नये' प्रमाणः अस्ति। १६ वा १७ वर्षात्
नक्षत्रं हे। १७वें प्रमाणानि बोद्धे कोटि १५१। नक्षत्रं ग्रह बार निसे जाकर वो
शतक बार नक्षत्रं अस्ति हे। १२ १४ नक्षत्रको शतक वो तैधे ही नक्षत्रं हे।

(८) अमन्त्रापाद-सूत्र-वचनम् :

अभिधिपिण्डं सुखेर्वाधिपिण्डाभिमानः परितो भवेत् ।

अमन्त्रापादं नवीशरत्नं मन्त्राभिः कवीन्द्रो ॥४८॥

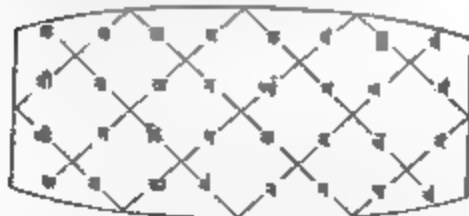


इस विषय में लोकाकः एक पक्ष में आता है दूसरे पक्षों का लोके काय सुखमन्त्रः को लोके सुख है । ऐसे सुख में लोकाकः म० ११, ११, १०० म० लिखित है ।

(९) धर्मोत्तरा-मन्त्र-सूत्र-वचनम् :

अमन्त्रापादं सुखेर्वाधिपिण्डाभिमानम् ।

अमन्त्रापादं नवीशरत्नं मन्त्राभिः कवीन्द्रो ॥ ४९ ॥



सुखमन्त्रके द्वा विषयों के लोके विषयों की विवक्षा है कि द्वा में अथवा एक पक्ष (क) एक एक पक्षके अन्तरों पक्षों जारी हो मन्त्राभिः बाजार

प्रयुक्त हुआ जान सकता है। इस प्रकारके बुनने स्तोक ८२ और २१ हैं।

(२) मन्त्रादिपरिचयः

नमोस्तुभ्यै महादेवाय नमिष्यामि यथाश्रितम्।

इष्टं मासं तु यागी अराहस्यं सत्संपादिनम् ॥ ३७ ॥

न	त	वा	म	ह	ज	वा	म	न	म	वा	म	र
---	---	----	---	---	---	----	---	---	---	----	---	---

इस को छन्दसे स्थित मन्त्रादि का उक्त्यो बरनने उक्त्यो कथन किया है। इसी प्रकार स्तोक २०, २१, २२ को प्रयुक्त मन्त्रादि का कथनो लिख दिया है।

(३, चतुर्विंशतिका द्वितीयपरिचयः-सप्तविंशतिका प्रथमपरिचयः-

मन्त्रादिपरिचयः-

प्राग्वारद्वारप्राग्वारं चकार चकारम्।

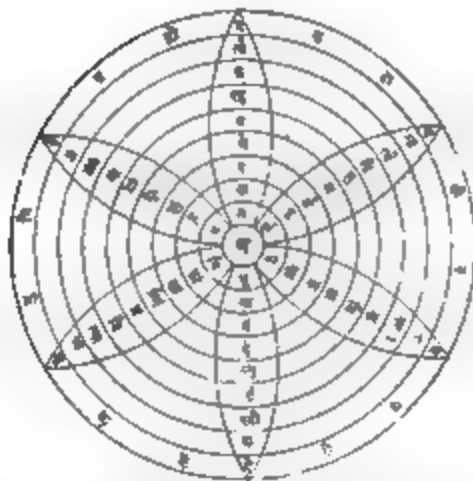
सामान्यमनप्राग्वारं मन्त्रादिपरिचयः ॥ ३८ ॥

वा	रा	वा	र	र	वा	रा	वा
रा	वा	वा	वा	वा	वा	वा	रा
वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा
र	वा	वा	वा	वा	वा	वा	र
र	वा	वा	वा	वा	वा	वा	र
वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा
वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा
वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा	वा

इस चतुर्विंशतिका का प्रथम स्तोक प्राग्वार चकार चकारम् है।

(२३) कवि-कृत्य-प्रमाण-वस्तुतः

मत्तैकमुनयेव आसमज्जना तं मेधुतं स्थिते
 सन्नन्देति मृगार्थं कृत्स्नचित्तं शान्तिं प्रजित्वाप्सवा ।
 मज्जन्या शमितान्दुःखाद्यमरुतं तिष्ठेज्जम स्वात्मने
 ये सद्भोगेकान्दानीयं वज्जने ते मे निजान् मुञ्चिन् ॥११६॥



इस चक्रकल्पके आधार पर ७ वें अंश में 'शान्तिनिरुद्ध' और चौथे अंश में 'शितभूत' नामके उपपञ्चिक दुर्गो हैं, जो कवि और काव्यके नाथ हैं। किन्तु
 सूत्र ६ । कवि और काव्यके नाथ बिना इन प्रकारके दुर्गों वस्तुतः ११६-११७,
 ११८-११९ वगैरे हैं ।

विज्ञानतः त्रैलोक्यं यन्मयं प्रवीणम् । कुचनं च केटके मंदारं पलाशं च ।
गर्गं च । समुद्रविद्युत्कं नम्रोपमं च । शतवज्रमसुतं च । शतकेयव नम्रं च ।
केतुकं च । त्रैलोक्यं च । यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

१. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
(१. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

२. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

३. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

४. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

५. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
६. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
७. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।
८. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

९. त्रैलोक्यं यन्मयं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च । त्रैलोक्यं च ।

(१) त्रैलोक्यं (५६, ५७, ५८), त्रैलोक्यं (५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००)

(२) त्रैलोक्यं (१०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०)

(३) त्रैलोक्यं (१३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०)

[illegible]

नामः शुक्रवर्मा

476

[illegible]

[illegible]

नाम संख्या

४३७

प्रकाशकः (चतुर्विंशति-प्रकाश) १९१५,	प्रकाशकः	१९१५
१९१६		
प्रकाशकः (चतुर्विंशति-प्रकाश) १९१५,		
१९१६		
१९१७		
१९१८		
१९१९		
१९२०		
१९२१		
१९२२		
१९२३		
१९२४		
१९२५		
१९२६		
१९२७		
१९२८		
१९२९		
१९३०		
१९३१		
१९३२		
१९३३		
१९३४		
१९३५		
१९३६		
१९३७		
१९३८		
१९३९		
१९४०		
१९४१		
१९४२		
१९४३		
१९४४		
१९४५		
१९४६		
१९४७		
१९४८		
१९४९		
१९५०		
१९५१		
१९५२		
१९५३		
१९५४		
१९५५		
१९५६		
१९५७		
१९५८		
१९५९		
१९६०		
१९६१		
१९६२		
१९६३		
१९६४		
१९६५		
१९६६		
१९६७		
१९६८		
१९६९		
१९७०		
१९७१		
१९७२		
१९७३		
१९७४		
१९७५		
१९७६		
१९७७		
१९७८		
१९७९		
१९८०		
१९८१		
१९८२		
१९८३		
१९८४		
१९८५		
१९८६		
१९८७		
१९८८		
१९८९		
१९९०		
१९९१		
१९९२		
१९९३		
१९९४		
१९९५		
१९९६		
१९९७		
१९९८		
१९९९		
२०००		
२००१		
२००२		
२००३		
२००४		
२००५		
२००६		
२००७		
२००८		
२००९		
२०१०		
२०११		
२०१२		
२०१३		
२०१४		
२०१५		
२०१६		
२०१७		
२०१८		
२०१९		
२०२०		
२०२१		
२०२२		
२०२३		
२०२४		
२०२५		
२०२६		
२०२७		
२०२८		
२०२९		
२०३०		
२०३१		
२०३२		
२०३३		
२०३४		
२०३५		
२०३६		
२०३७		
२०३८		
२०३९		
२०४०		
२०४१		
२०४२		
२०४३		
२०४४		
२०४५		
२०४६		
२०४७		
२०४८		
२०४९		
२०५०		
२०५१		
२०५२		
२०५३		
२०५४		
२०५५		
२०५६		
२०५७		
२०५८		
२०५९		
२०६०		
२०६१		
२०६२		
२०६३		
२०६४		
२०६५		
२०६६		
२०६७		
२०६८		
२०६९		
२०७०		
२०७१		
२०७२		
२०७३		
२०७४		
२०७५		
२०७६		
२०७७		
२०७८		
२०७९		
२०८०		
२०८१		
२०८२		
२०८३		
२०८४		
२०८५		
२०८६		
२०८७		
२०८८		
२०८९		
२०९०		
२०९१		
२०९२		
२०९३		
२०९४		
२०९५		
२०९६		
२०९७		
२०९८		
२०९९		
२१००		

लेखककी कुछ अन्य विशिष्ट कृतियाँ

१ **बंध-परीक्षा** (ग्रन्थ नाम) — उपासकानिष्ठाकाचार, कुलकृतधायकाचार और निम्नोक्त-निर्वाहकाचारकी परीक्षाएँ ।

२ " (द्वितीय ग्रन्थ) — अष्टवक्ष-संक्षिप्तार्थ परीक्षा ।

३ " (तृतीय ग्रन्थ) — सोपान-निर्वाहकाचार, सर्वपरीक्षा (खे०)
कुलकाच-उपासकाचार, धर्मक-वर्तमानाचारकी परीक्षाएँ ।

४ " (चतुर्थ ग्रन्थ) — सुवैयर्थ्य-परीक्षा ।

५ **निम्नपूजाविचार-सीमांसा** — मुक्तविचार-विषयक विवेचनात्मक निबन्ध ।

६ **उपासनाग्रन्थ** — अष्टवक्ष-निबन्धक विद्वानोंका प्रतिपाद्य ग्रन्थ ।

७ **विश्व-साधुहं १४** — विद्वान्का अष्टवक्ष आर्थिक और आर्थिक विवेचन ।

८ **विश्वविद्वान् ३-४** — विद्वान्का विश्व-संरक्षक अष्टवक्ष निबन्ध ।

९ **जैनाचार्योका सायक-अर्थ** — जैनाचार्योका मत-भेदोंका अष्टवक्ष विवेचन ।

१० **वर्षभूषणोक्त** — मुक्त पद्धतिसे लिखित विविध हिन्दी अनुवाद ।

११ **कुलकृतधायकाचार** — सर्व जैनीके लिखित सर्व ग्रन्थ हिन्दी टीका ।

१२ **समाधीन-धर्मग्रन्थ** — समीर विवेचनार्थिक ग्रन्थ लिखित हिन्दी भाषा
निरागत अष्टवक्ष-वर्षिक ।

१३ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्षका मुक्त हिन्दी भाषाविवेचन ।

१४ **पुरातन जैनकाव्य सूची** — १४ अष्टवक्षोकी विधान अष्टवक्षग्रन्थ ।

१५ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — २१ अष्टवक्ष १३० अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

१६ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

१७ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

१८ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

१९ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२० **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२१ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२२ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२३ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२४ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२५ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।

२६ **अष्टवक्षका अष्टवक्षग्रन्थ** — अष्टवक्ष अष्टवक्षका अष्टवक्ष ।